आदमी

सतीश कुमार

आदमी-दर-आदमी

भारत

प्रभाकर मेनन

●

विश्व की परिक्रमा ! परन्तु इतनी लम्बी यात्रा के लिए किसी ऐसे साथी की मुझे तलाश थी, जो न केवल मेरे मन का हो, बल्कि मेरे विचारों के साथ भी जिसका सामंजस्य हो। दुनिया की यात्रा करने का विचार तो मन मे एक लम्बे अरसे से था, परन्तु किसी उपयुक्त साथी के अभाव में कई बार योजनाएँ बन-बनकर बीच में ही रह गयीं। आखिर मुझे अपना मनचाहा साथी भी मिल गया। वह था, प्रभाकर मेनन।

१९५५ मे प्रभाकर से मेरी पहली मुलाकात भगवान बुद्ध की भूमि बोधगया मे हुई थी। उस समय मैं 'समन्वय आश्रम' में रहा करता था। जब पहली बार प्रभाकर मुझसे मिला तो मैं जैन साधु के कपड़ों में था। इसलिए प्रभाकर को कुछ अजीब-सा लगा। कैसे एक युवक इस प्रकार साम तरह का वेश धारण करके अपने आप को साधु बनाये हुए है, यह प्रभाकर की समझ में नहीं आया। इसलिए उसने मेरे साथ एक लम्बे समय तक इस विषय पर ही बातचीत की। मैंने प्रभाकर को बताया कि "मैं ९ साल की उम्र में वैराग्य धारण करके घर छोड़कर जैन मुनि

बन गया था। मुझे ऐसा लगा कि संसार झूठा है, मोह-माया का घर है, इसलिए मुझे संसार छोड़कर निर्वाण-प्राप्ति की साधना करनी चाहिए। ९ वर्ष तक जैन मुनि की जीवनचर्या व्यतीत करने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि साधना के लिए संसार से दूर जाने की जरूरत नहीं है, इसलिए अब मैं जैन मुनि का जीवन छोड़कर यहाँ आया हूँ तथा खेती और श्रम-निष्ठा के साथ एक नया जीवन प्रारम्भ कर रहा हूँ।"

जब प्रभाकर को यह मालूम हुआ कि मैं जैन मुनि नहीं हूँ, केवल वेश ही मेरे शरीर पर है तो प्रभाकर ने कहा कि आखिर इस बोझ की भी क्या जरूरत? यह बात मेरे मन की ही थी। मैं भी इस वेश को छोड़कर एक साधारण मनुष्य की तरह ही जीवन बिताना चाहता था। मैंने साधु का वेश छोड़ दिया और साधारण धोती-कुर्ता पहनकर "समन्वय आश्रम में खेती करने लगा। उसके बाद तो प्रभाकर के साथ मेरी मुलाकात बराबर होती रहती थी। कभी-कभी प्रभाकर के साथ सिनेमा देखने के लिए और रेस्तराँ में चाय पीने के लिए भी मैं जाता था। हालाँकि प्रभाकर बोधगया से दस मील दूर, गया शहर में रहता था। फिर भी हमारी मित्रता धीरे-धीरे मजबूत होती गयी। इसी बीच प्रभाकर बेंगलोर रहने लगा। लगभग छः साल के बाद मैं 'विश्वनीड़म्' में रहने के लिए बेंगलोर गया। स्टेशन पर ही प्रभाकर मुझे लेने आया। बेंगलोर में तो हम एक ही जगह काम करने के कारण और अधिक निकटता से एक दूसरे को समझ सके। पिछले छः सालों की मित्रता ने नया रूप धारण किया। मेरे मन में प्रभाकर के प्रति एक विशेष आकर्षण तथा अनुराग बढ़ता जा रहा था। मुझे यह बात अच्छी तरह जँच गयी कि किसी भी काम के लिए प्रभाकर पर पूरा भरोसा किया जा सकता है। सबसे पहले तो प्रभाकर की यह बात मुझे बहुत पसन्द आयी कि वह समय का बहुत पाबन्द है। कई बार

हम टेलीफोन पर यह तय करते थे कि हम २ बजकर १५ मिनट पर कैम्पागोडा सर्कल के बस-स्टैंड पर मिलेंगे। मुझे किसी दूसरे स्थान से आना होता था और प्रभाकर को भी कहीं दूर-दराज से आना होता था; फिर भी हम दोनों ठीक समय पर और निश्चित स्थान पर मिल जाते थे। इस तरह के प्रसंगों से मैं बहुत प्रभावित होता था। इसलिए जब विश्व-यात्रा के लिए प्रभाकर सामने आया तो मुझे यह विश्वास हुआ कि यही वह व्यक्ति है जिसकी मुझे तलाश थी।

बेंगलोर के कैम्पागोड़ा सर्कल मे गुप्ता रैस्तरां की ऊपरवाली मंजिल मे कॉफ़ी की टेबल पर हम लोग गहराई से विचार-विमर्श करते रहते थे। अनेक बार हम दोनों किसी विषय पर घंटों चर्चा करते रहते थे। मैंने देखा कि हम दोनों के मन मे एक ही तरह की चिनगारी जल रही है। नवम्बर महीने की वह शाम तो एक नयी ताजगी और उत्साह देनेवाली शाम थी, जब हम दोनों कॉफी-हाउस मे बातें कर रहे थे। कॉफ़ी पीते-पीते बात निकली आणविक नि.शस्त्रीकरण की। प्रभाकर बोले . "लेकिन भारत का योगदान इस आंदोलन में बहुत ही कम है।"

मैंने कहा : "इसका एक कारण यह हो सकता है कि भारत किसी सैनिक गुट में नहीं है। भारत सरकार की नीति अणु-शस्त्रों के खिलाफ़ है, इसलिए जनता और सार्वजनिक कार्यकर्ताओं का ध्यान इस ओर बहुत कम है।"

प्रभाकर ने कहा : "लेकिन हमें नि.शस्त्रीकरण आंदोलन के अन्तर्राष्ट्रीय बल को बढ़ाने के लिए कुछ तो करना ही चाहिए। हम लोग शांति और अहिंसा की बातें करते हैं, इस दिशा में काम भी करना चाहिए। क्यों न हम दिल्ली से मास्को, पेरिस, लंदन और वाशिंगटन जायें। ये जो चार आणविक राजधानियां हैं वहां के लोगों से तथा वहां के नेताओं से जाकर आणविक शस्त्रों को समाप्त करने की अपील करें।"

प्रभाकर के मुंह से अचानक एक साहसभरी वात फूट पड़ी। मेरे मन में तो इस तरह की वात चल ही रही थी। मैंने तुरन्त प्रभाकर की पीठ ठोकी : "शावास, तुम्हारी वात मेरे मन में तीर की तरह चुभ गयी है।"

"मेरी वात सुनते ही प्रभाकर का जोश कई गुना वढ़ गया। पर क्या हम दो ही इसके लिए काफ़ी हैं?"

मैंने कहा : "मेरे मित्र, संख्या पर न जाओ, गुण पर जाओ। अगर हम सच्चे दिल से काम करेंगे तो १ और १ मिलकर २ नहीं वल्कि ११ जैसे होंगे।" इसी वातचीत में हमने दो-तीन कप कॉफ़ी पी डाली। वात पक्की हो गयी।

प्रभाकर केरल का है और मैं राजस्थान का। इस तरह एक दक्षिण का प्रतिनिधि और दूसरा उत्तर का प्रतिनिधि। कुल मिलाकर हम दोनों पूरे भारत के प्रतिनिधि होंगे, ऐसा मुझे लगा। दुर्भाग्य से मैं तो दक्षिण की कोई भाषा नहीं जानता; पर प्रभाकर ऐसी प्यारी हिन्दी वोलता है कि कभी-कभी मेरी हिन्दी भी उसके सामने शरमाने लगती है। हमने विश्व की यात्रा पर जाने का तो निश्चय किया; पर यात्रा का साधन क्या हो, इस पर भी हम दोनों काफ़ी सोचते रहे। कार से जाने की वात सोची। फिर सोचा कि हम दोनों ही साइकिल-यात्रा में माहिर हैं, इसलिए दो साइकिलों पर रवाना हों। लेकिन आखिर में वहुत सोचकर हम इस नतीजे पर पहुँचे कि क्यों न पैदल ही दुनियाँ की यात्रा की जाय? पैदल जाने से हम गाँव-गाँव तक पहुँच सकेंगे। साधारण-से-साधारण मनुष्य तक पहुँच सकेंगे। दुनिया का वास्तविक दर्शन होगा। अगर ऐरोप्लेन, कार या साइकिल से जायेंगे तो वड़े-वड़े स्थानों पर ही जा पायेंगे। पदयात्रा से वढ़कर विश्व-दर्शन का कोई उत्तम साधन नहीं हो सकता। हम दोनों इस निर्णय पर सहमत हो गये। उन दिनों प्रभाकर और मुझको रात-रात भर नींद नहीं

जाती थी। यात्रा की योजना तैयार करने में ही हमारा सारा चिंतन और समय खर्च होता था। आखिर हमलोग यात्रा पर रवाना हुए।

२७ महीने तक मैं और प्रभाकर, अनवरत रूप से साथ-साथ रहे। अफ़ग़ानिस्तान के पहाड़ों और ईरान के रेगिस्तानों में जब हम दोनों चलते थे तो दिन-दिन भर किसी मनुष्य के दर्शन तक नहीं होते थे। हम दो ही थे, जो आपस में बातचीत करते हुए चलते जाते थे। दुनिया का शायद ही ऐसा कोई विषय बचा हो, जिसपर हम दोनों ने बहस न की हो। प्रेम-शास्त्र और काम-शास्त्र से लेकर साम्यवाद और पूँजीवाद, साहित्य और जीवन, कविता और अकविता, समाज-शास्त्र और अर्थ-शास्त्र आदि कोई भी विषय नहीं बचा होगा, जिस पर हम दोनों ने बातचीत न की हो। कभी-कभी तो बातचीत करते-करते हम थक जाते और घंटों चुपचाप ही चलते रहते। कभी-कभी बातचीत का ही अन्त हो जाता। मैंने कई बार सोचा कि अगर हमारे साथ एक टेप-रेकार्डर होता और मैंने तथा प्रभाकर ने अपनी विश्व-यात्रा के दौरान जो बातचीत की है उसका रेकार्ड रखा जाता तो उस पर शायद कई किताबें तैयार हो जातीं।

इस लम्बी यात्रा में कभी-कभी हम दोनों के बीच झगड़ा भी हो जाता था, पर यह झगड़ा किसी सैद्धान्तिक प्रश्न को लेकर; नहीं बल्कि किसी छोटी-मोटी बात को लेकर ही होता। एक बार जर्मनी में एक गाँव से गुजरते हुए हमने एक बड़ी-सी टंकी देखी। मैंने कहा : "यह पानी की टंकी है।" प्रभाकर ने कहा :"यह तेल की टंकी है।" अपनी-अपनी बात को सिद्ध करने में हमने अपने-अपने तर्क पेश किये। घंटों हमारी बहस चली। मैंने कहा : "तुम मूर्ख हो, तुम्हें कुछ पता नहीं चलता।" प्रभाकर ने कहा : "तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। पानी की टंकी और तेल-टंकी में फ़र्क़ करने की तमीज़ भी तुमको नहीं है।" मुझे याद है, उस दिन हम लोग इस बात को लेकर खूब झगड़े। इसी

तरह एक बार पेरिस जाते हुए सड़क के घुमाव के बारे में हम लोग उलझ गये। उस दिन भी यह सिद्ध करने के लिए कि हमारी सड़क किस दिशा से किस दिशा की ओर घूमी है, हमने घण्टों लगा दिये और आखिर लड़-झगड़कर शांत हुए। सौभाग्य की बात यह थी कि व्यक्तिगत मामलों में एकदूसरे के साथ उदारता बरतने की नीति हमने अपना रखी थी, इसलिए हमारी पटरी अच्छी तरह बैठ गयी। वैचारिक मामलों में भी हम लोग लगभग सभी विषयों पर एकमत थे। मुझे इस बात का बड़ा गर्व है कि प्रभाकर जैसा साथी विश्व-यात्रा के लिए प्राप्त हुआ। हम दोनों इतने दिन निकट रहकर अब और भी निकट हो गये हैं तथा एकदूसरे को पहले से कहीं अधिक प्यार करते हैं।

विनोबा भावे

विश्व-यात्रा के लिए जिन लोगों ने पूरे दिल के साथ हमारा समर्थन किया और हमको आशीर्वाद दिया उनमें विनोबाजी का स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। बेंगलोर से हम १६ मई को विनोबा से मिलने के लिए गौहाटी पहुँचे। वे उस समय गौहाटी से २७ मील दूर गोरेश्वर ग्राम में थे।

प्रभाकर और मैं पिछले कई वर्षों से विनोबा के साथ काम करते रहे हैं, इसलिए विश्व-यात्रा पर निकलने के पहले उनके साथ परामर्श करने की बात आवश्यक थी। मैं विनोबा के पास १९५५ में आया था। हालांकि इन वर्षों में विनोबा के साथ विविध विषयों पर विचार-विनिमय करते हुए भी मैं विनोबा के विचारों से पूरी तरह सहमत नहीं हो पाता। मैं एक भौतिकवादी हूं और धर्म तथा अध्यात्म का विरोधी भी, जबकि विनोबा अध्यात्मवाद के उपासक हैं। मैं आधुनिकता और विज्ञान का भक्त हूं, जबकि विनोबा, वर्णाश्रम धर्म के प्रचारक। मैं अनीश्वरवादी हूं, जबकि विनोबा ईश्वर के प्रति पूरी तरह से समर्पित। फिर भी विनोबा के साथ काम करना मैंने इसलिए स्वीकार किया कि आज भारत में भूमि की वर्तमान व्यवस्था में क्रान्ति की जरूरत है और विनोबा उसके लिए प्रयत्नशील हैं। जब तक भूमि की समस्या का हल नहीं हो जाता तब तक देश की अन्य समस्याएं भी हल नहीं होंगी, यह मानकर मैंने विनोबा के आन्दोलन में साथ दिया।

जब हम गोरेश्वर ग्राम में पहुंचे तो विनोबा मैत्री आश्रम की कुछ बहनों के साथ बातें कर रहे थे। हम दोनों थोड़ी दूर हटकर बैठ गये। विनोबा का आकर्षक व्यक्तित्व हमारे सामने था। उनकी बकरी की-सी दाढ़ी, जिसे वे कभी कभी एकदम साफ कर देते हैं, बड़ी खूबसूरत लग रही थी। दो सेर दही पर निर्भर रहनेवाली उनकी काया, पेट के अलसर के कारण कोई सघन पदार्थ नहीं पचा सकती। घुटनों तक की उनकी धोती और छोटी-सी चद्दर दूध की तरह सफेद थी। पवनार की नदी के किनारे की कुटिया का यह सन्त सारे देश की आंखें अपनी तरफ आकृष्ट किए हुए है। गीता, धम्मपद, कुरान, बाइबिल आदि ग्रंथों के प्रति समान आदर उसके जीवन में समाया हुआ है। हिन्दी, संस्कृत, फ्रेंच, जर्मन, अंग्रेजी, मराठी आदि चौदह भाषाओं की विद्वत्ता उसके भाषा-प्रेम की निशानी है। सरकारी नेताओं का श्रद्धापात्र होकर भी

तरह एक बार पेरिस जाते हुए सड़क के घुमाव के बारे में हम लोग उलझ गये। उस दिन भी यह सिद्ध करने के लिए कि हमारी सड़क किस दिशा से किस दिशा की ओर घूमी है, हमने घण्टों लगा दिये और आखिर लड़-झगड़कर शांत हुए। सौभाग्य की बात यह थी कि व्यक्तिगत मामलों में एकदूसरे के साथ उदारता बरतने की नीति हमने अपना रखी थी, इसलिए हमारी पटरी अच्छी तरह बैठ गयी। वैचारिक मामलों में भी हम लोग लगभग सभी विषयों पर एकमत थे। मुझे इस बात का बड़ा गर्व है कि प्रभाकर जैसा साथी विश्व-यात्रा के लिए प्राप्त हुआ। हम दोनों इतने दिन निकट रहकर अब और भी निकट हो गये हैं तथा एकदूसरे को पहले से कहीं अधिक प्यार करते हैं।

विनोबा भावे

●

विश्व-यात्रा के लिए जिन लोगों ने पूरे दिल के साथ हमारा समर्थन किया और हमको आशीर्वाद दिया उनमें विनोबाजी का स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। बेंगलोर से हम १६ मई को विनोबा से मिलने के लिए गौहाटी पहुँचे। वे उस समय गौहाटी से २७ मील दूर गोरेश्वर ग्राम में थे।

प्रभाकर और मैं पिछले कई वर्षों से विनोबा के साथ काम करते रहे हैं, इसलिए विश्व यात्रा पर निकलने के पहले उनके साथ परामर्श करने की बात आवश्यक थी। मैं विनोबा के पास १९५४ में आया था। हालाँकि इन वर्षों में विनोबा के साथ विविध विषयों पर विचार-विनिमय करते हुए भी मैं विनोबा के विचारों से पूरी तरह सहमत नहीं हो पाता। मैं एक भौतिकवादी हूँ और धर्म तथा अध्यात्म का विरोधी भी, जबकि विनोबा अध्यात्मवाद के उपासक हैं। मैं आधुनिकता और विज्ञान का भक्त हूँ, जबकि विनोबा, वर्णाश्रम धर्म के प्रचारक। मैं अनीश्वरवादी हूँ, जबकि विनोबा ईश्वर के प्रति पूरी तरह से समर्पित। फिर भी विनोबा के साथ काम करना मैंने इसलिए स्वीकार किया कि आज भारत में भूमि की वर्तमान व्यवस्था में क्रान्ति की जरूरत है और विनोबा उसके लिए प्रयत्नशील हैं। जब तक भूमि की समस्या का हल नहीं हो जाता तब तक देश की अन्य समस्याएँ भी हल नहीं होंगी, यह मानकर मैंने विनोबा के आन्दोलन में साथ दिया।

जब हम गोरेश्वर ग्राम में पहुँचे तो विनोबा मैत्री आश्रम की कुछ बहनों के साथ बातें कर रहे थे। हम दोनों थोड़ी दूर हटकर बैठ गये। विनोबा का आकर्षक व्यक्तित्व हमारे सामने था। उनकी बकरी की-सी दाढ़ी, जिसे वे कभी कभी एकदम साफ़ कर देते हैं, बड़ी खूबसूरत लग रही थी। दो सेर दही पर निर्भर रहनेवाली उनकी काया, पेट के अलसर के कारण कोई सघन पदार्थ नहीं पचा सकती। घुटनों तक की उनकी धोती और छोटी सी चद्दर दूध की तरह सफेद थी। पवनार की नदी के किनारे की कुटिया का यह सन्त सारे देश की आँखें अपनी तरफ आकृष्ट किए हुए है। गीता, धम्मपद, कुरान, बाइबिल आदि ग्रंथों के प्रति समान आदर उसके जीवन में समाया हुआ है। हिन्दी, संस्कृत, फ्रेंच, जर्मन, अंग्रेजी, मराठी आदि चौदह भाषाओं की विद्वत्ता उसके भाषा-प्रेम की निशानी है। सरकारी नेताओं का श्रद्धापात्र होकर भी

तरह एक बार पेरिस जाते हुए सड़क के घुमाव के बारे में हम लोग उलझ गये। उस दिन भी यह सिद्ध करने के लिए कि हमारी सड़क किस दिशा से किस दिशा की ओर घूमी है, हमने घण्टों लगा दिये और आखिर लड़-झगड़कर शांत हुए। सौभाग्य की बात यह थी कि व्यक्तिगत मामलों में एकदूसरे के साथ उदारता बरतने की नीति हमने अपना रखी थी, इसलिए हमारी पटरी अच्छी तरह बैठ गयी। वैचारिक मामलों में भी हम लोग लगभग सभी विषयों पर एकमत थे। मुझे इस बात का बड़ा गर्व है कि प्रभाकर जैसा साथी विश्व-यात्रा के लिए प्राप्त हुआ। हम दोनों इतने दिन निकट रहकर अब और भी निकट हो गये हैं तथा एकदूसरे को पहले से कहीं अधिक प्यार करते हैं।

विनोबा भावे

विश्व-यात्रा के लिए जिन लोगों ने पूरे दिल के साथ हमारा समर्थन किया और हमको आशीर्वाद दिया उनमें विनोबाजी का स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। बेंगलोर से हम १६ मई को विनोबा से मिलने के लिए गौहाटी पहुँचे। वे उस समय गौहाटी से २७ मील दूर गोरेश्वर ग्राम में थे।

प्रभाकर और मैं पिछले कई वर्षों से विनोबा के साथ काम करते रहे हैं, इसलिए विश्व-यात्रा पर निकलने के पहले उनके साथ परामर्श करने की बात आवश्यक थी। मैं विनोबा के पास १९५५ में आया था। हालांकि इन वर्षों में विनोबा के साथ विविध विषयों पर विचार-विनिमय करते हुए भी मैं विनोबा के विचारों से पूरी तरह सहमत नहीं हो पाता। मैं एक भौतिकवादी हूँ और धर्म तथा अध्यात्म का विरोधी भी, जबकि विनोबा अध्यात्मवाद के उपासक हैं। मैं आधुनिकता और विज्ञान का भक्त हूँ, जबकि विनोबा, वर्णाश्रम धर्म के प्रचारक। मैं अनीश्वरवादी हूँ, जबकि विनोबा ईश्वर के प्रति पूरी तरह से समर्पित। फिर भी विनोबा के साथ काम करना मैंने इसलिए स्वीकार किया कि आज भारत में भूमि की वर्तमान व्यवस्था में क्रान्ति की जरूरत है और विनोबा उसके लिए प्रयत्नशील हैं। जब तक भूमि की समस्या का हल नहीं हो जाता तब तक देश की अन्य समस्याएँ भी हल नहीं होंगी, यह मानकर मैंने विनोबा के आन्दोलन में साथ दिया।

जब हम गोरेश्वर ग्राम में पहुँचे तो विनोबा मैत्री आश्रम की कुछ बहनों के साथ बातें कर रहे थे। हम दोनों थोड़ी दूर हटकर बैठ गये। विनोबा का आकर्षक व्यक्तित्व हमारे सामने था। उनकी बकरी जैसी दाढ़ी, जिसे वे कभी कभी एकदम साफ कर देते हैं, बड़ी खूबसूरत लग रही थी। दो सेर दही पर निर्भर रहनेवाली उनकी काया, पेट के अलसर के कारण कोई सघन पदार्थ नहीं पचा सकती। घुटनों तक की उनकी धोती और छोटी सी चद्दर दूध की तरह सफेद थी। पवनार की नदी के किनारे की कुटिया का यह सन्त सारे देश की आँखें अपनी तरफ आकृष्ट किए हुए है। गीता, धम्मपद, कुरान, बाइबिल आदि ग्रंथों के प्रति समान आदर उसके जीवन में समाया हुआ है। हिन्दी, संस्कृत, फ्रेंच, जर्मन, अंग्रेजी, मराठी आदि चौदह भाषाओं की विद्वत्ता उसके भाषा-प्रेम की निशानी है। सरकारी नेताओं का श्रद्धापात्र होकर भी

धन्यवाद देते थे। कभी-कभी कुछ कठिनाइयां अवश्य आयीं। कभी-कभी खाना भी नहीं मिला। एक बार तो ईरान में तीस घंटे तक बिना भोजन के रहना पड़ा, पर यह सारी मुसीबतें नगण्य थीं। अगर थोड़ा-बहुत कष्ट न आये तो यात्रा का आनन्द ही क्या? अगर कष्ट से ही डर होता तो विश्व-यात्रा पर निकलते ही क्यों? परन्तु विश्व-यात्रा की कल्पना करते हुए कठिनाइयों और कष्टों के बारे में जो कल्पना होती थी वैसी कठिनाइयां नहीं आयीं। असलियत तो यह है कि जब कठिनाई को स्वीकर करने के लिए मन तैयार हो जाये तब कठिनाई कठिन नहीं रह जाती है।

इस प्रकार भारत का यह मनस्वी संत पूरी विश्व-यात्रा में हमारे साथ रहा। शाकाहारी होने के कारण भी कुछ दिक्कतें आयीं। कुछ स्थान तो ऐसे मिले जहां पर लोग यह कल्पना भी नहीं कर सकते कि बिना मांस के भी जिन्दा रहा जा सकता है। ईरान में तो लोग बड़े ताज्जुब के साथ हमें कहा करते थे कि 'शुमा, गल्ला-ब-गल्ला खुर्दन।' यानी आप अनाज को अनाज के साथ कैसे खाते हैं? पर जैसा कि विनोबा ने कहा था यह शाकाहार और पैसा-मुक्ति निश्चय ही हमारे लिए गदा और चक्र ही साबित हुए।

उजागर सिंह बिलगा

०

१ जून, १९६२ को हम दिल्ली से पदयात्रा पर रवाना हुए और ३ जुलाई को हमने भारत की सरहद छोड़कर पाकिस्तान में प्रवेश

किया। पंजाब की इस यात्रा में हमें अनेक ऐसे दिलचस्प और स्मरणीय व्यक्ति मिले, जिनको भूल पाना असम्भव है। ऐसे ही व्यक्तियों में एक हैं—श्री उजागर सिंह बिलगा। वे राजपुरा में आकर हमसे मिले और अमृतसर तक साथ रहे। वे लुधियाना जिले के हैं, इसलिए जब तक हमारी पदयात्रा लुधियाना जिले में चली तब तक तो वे प्रतिदिन हमारे साथ थे। उनके लिए यात्रा पर कहीं जाना-आना बहुत ही स्वाभाविक है। हम देखते थे कि शाम को हमारी व्यवस्था करने में वे लगे हुए हैं। रात को सोने के समय मालूम होता कि वे अमृतसर चले गये हैं। सवेरे जब हम अपनी पदयात्रा पर रवाना हो रहे होते तब देखते कि बिलगाजी हमारी पदयात्रा में साथ हैं। इस प्रकार शाम से सुबह तक १००-२०० मील की यात्रा करके चले आना उनके लिए एक सहज बात होती है।

वे आजादी के आन्दोलन में बहुत ही सक्रिय थे। उनका संबंध अनेक क्रांतिकारियों के साथ था और कांग्रेस के नेताओं के साथ भी उन्होंने कन्धे-से-कन्धा लगाकर काम किया था, इसलिए आज जहाँ भी देखो, उनके परिचितों और मित्रों की संख्या बहुत बड़ी है। वे जहाँ भी जाते हैं अपने परिचितों को ढूँढ़ ही लेते हैं। उनकी उम्र ६० के ऊपर होगी, पर वे तीस-चालीस वर्ष के युवक की तरह भाग-दौड़ करनेवाले एवं उत्साह तथा तत्परता रखनेवाले व्यक्ति हैं।

हम उनके घर पर २० जून को ठहरे। उन्होंने भारत को अनेक संतानें दी हैं। कभी कभी तो अपनी संतानों की बराबर गिनती करना उनके लिए भी आसान नहीं होता। वैसे तो आज के संतति-नियमन के जमाने में उन्हें अनेक ताने और व्यंग्य सुनने पड़ते हैं, पर उन्हें इस प्रकार के तानों पर कोई रोष नहीं आता। उनका गाँव, फिल्लौर सत-लज नदी के किनारे पर बसा हुआ है। यहीं पर गांधीजी के फूल भी बहाये गये थे, इसलिए प्रतिवर्ष सर्वोदय-मेला भी लगता है। जब हम

काश ! डा० इक़वाल की यह वात सच सावित होती । भारत और पाकिस्तान के लोग मजहव के नाम पर वैर के वीज न वोते । डा० इकवाल ने जव लिखा था कि "सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा, हम वुलवुले हैं इसकी, ये गुलसिताँ हमारा ।" उस समय क्या किसी ने यह सोचा भी था कि उस हिन्दुस्तान को मजहव के नाम पर दो टुकड़ों में बाँट दिया जायेगा । हमने विनम्र और प्रशान्त भाव से डा० इक़बाल की समाधि पर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की ।

औरंगजेब की बनायी हुई यह मस्जिद भी अपने ढंग की एक निराली मस्जिद है और शायद दुनिया की सवसे वड़ी भी । श्री यासीन ने कहा कि चलिये, मीनार पर चढ़कर लाहौर के दर्शन कीजिये । हमने उनकी सलाह मानी और २२ लाख की आवादीवाले इस विशाल शहर के दर्शन पाये ।

श्री गुलाम यासीन वोले कि लाहौर आकर शालामार गार्डेन न देखना तो एक भूल ही मानी जायेगी । वहाँ पर श्री यासीन ने हमारे लिए एक छोटे-से स्वागत समारोह का आयोजन कर डाला । शालामार गार्डेन जितना भव्य, आकर्षक और मनोहारी है, उससे कहीं ज्यादा भव्य, आकर्षक और मनोहारी है श्री गुलाम यासीन की मित्रता ।

शालामार गार्डेन के फौव्वारों के पास से गुजरते हुए श्री यासीन ने कहा : "आपकी और मेरी मित्रता जिस प्रकार हार्दिकता के साथ प्रकट हो रही है वैसे ही भारत की और पाकिस्तान की मित्रता भी प्रकट हो तो हमारी मित्रता चिरस्थायी हो सकेगी ।" गुलाम यासीन के साथ हम लाहौर की गलियों के चक्कर लगाते रहे । यासीन ने हमें लाहौर की प्रसिद्ध चाट भी खिलायी । वैसे तो दिल्ली के दही-वड़े और चाट वहुत मशहूर माने जाते हैं परन्तु लाहौर की चाट भी अपनी खासियत रखती है । जव हम चाट वालों की दुकान पर वैठे वातचीत कर रहे थे तव कोई पन्द्रह-वीस पाकिस्तानी भाई हमें देखने

के लिए इकट्ठे हो गए। यह जानकर कि हम हिन्दुस्तान से आ रहे हैं, लोगों में एक खास तरह की उत्सुकता पैदा हो रही थी। किसी ने पूछा कि कश्मीर को कब आजादी मिलेगी? किसी दूसरे ने पूछा कि हिन्दुस्तान के मुसलमानों का क्या हाल है? इस तरह के सवालों का उत्तर देने में हमें बड़ी सावधानी बरतनी पड़ती थी। भीड़ में से आवाज आयी: "भारत की फिल्में बड़ी अच्छी होती हैं।" एक दूसरी आवाज आयी "हिन्दुस्तानी फिल्मों के गानों का तो कोई जवाब नहीं।" इस तरह से तरह-तरह की प्रतिक्रियाओं को सुनते हुए हमने चाट खाने का आनन्द लिया।

एक दिन के लिए आये थे, पर गुलाम यासीन ने हमें तीन दिन तक लाहौर में रोका। हमारी खूब खातिर की। जब हम चलने लगे तो हमारी जेब में लगभग १०० रुपये के नोट रखते हुए बोले: "आप ये रख लीजिए। कहीं ठहरने की जगह न मिली या खाना न मिला तो काम देंगे।" पर हमने कहा "आप जैसे मित्र हमें हर जगह मिलेंगे। हमें पैसा नहीं चाहिए।" भरे दिल से गुलाम यासीन की भीगी आँखों को छोड़कर हम विदा हुए।

श्री नौशाद

●

२१ जुलाई की संध्या में हमने अटक नदी पार करके सेराबाद में प्रवेश किया। वहाँ पर हमारी मुलाकात हुई श्री नौशाद से। जवानी

डर रहे थे, परन्तु यह बात केवल शरीर देखकर ही कही जा सकती थी। अगर आप उनकी आत्मा के अन्दर झाँक सकें तो आपको लगेगा कि वे बड़ी मस्ती के दिनों में हैं। हमारे लिए बिल्कुल अपरिचित स्थान था—गेगावाद, लेकिन नौशाद के मीठे व्यव-हार ने हमें यह महसूस तक नहीं होने दिया कि हम किन्हीं अपरिचित लोगों के बीच में हैं। पठानों का यह गाँव हमारे लिए ऐसी बस्ती बन गया मानो हम यहीं के बाशिंदे हों।

सूरज ढल रहा था। धीरे-धीरे अँधेरा बढ़ रहा था। एक खूब-सूरत पहाड़ी को लाँघकर जब हम गेगावाद के बाजार में पहुँचे तो हमने सोचा कि अब आगे बढ़ना ठीक नहीं होगा। पैदल चलकर अब किसी दूसरे गाँव तक पहुँच पाना सम्भव नहीं है, इसलिए हमने बाजार में ही पता लगाया कि हमारे लिए कहीं ठहरने की व्यवस्था हो सकती है या नहीं? हमारे चारों ओर बहुत से पठान एकत्रित हो गये। तरह-तरह के सवाल पूछे जाने लगे। परन्तु किसी को यह साहस नहीं हो रहा था कि हमें अपने घर ठहरा ले। इतने में भीड़ में से एक आवाज आयी—"क्या आप केवल रात भर ही ठहरना चाहते हैं?" यह आवाज एक मुस्कराते हुए मुँह से निकली थी। हमने कहा : "हाँ, केवल रात-भर। हमें एक गाँव में अधिक समय बिताने के लिए समय नहीं मिल पाता। हम मुसाफिर हैं और हमारी मंजिल बहुत दूर है।" उस व्यक्ति ने कहा—"अच्छा, आप मेरे घर चलिए।"

यह श्री नौशाद का घर था। नीचे दुकान और ऊपर मकान। नौशाद बोले : "आप दिन भर के थके हुए होंगे और भूख भी गहरी लगी होगी इसलिए पहले कोई बातचीत करने की बजाय हम कुछ खा लें और उन्होंने तुरंत हमारे लिए खाने की व्यवस्था जुटायी। हमारे सामने एक सफेद कपड़ा, दस्तरखान, बिछा दिया गया। थाली की कोई जरूरत नहीं। उन्होंने बाँस की टोकरी में कपड़े में लपेटी

हुई रोटियाँ हमारे सामने लाकर रख दीं। कुछ फल और अलग-अलग प्यालों में कुछ सब्जियाँ भी रख दी गयी। जूठन का कोई परहेज नहीं। हमारे पास में ही मिट्टी का एक कूजा भरकर रख दिया गया। एक ही गिलास से सब लोग पानी भर-भरकर पी रहे थे। नौशाद ने कहा : "हम सब एक हैं। हमारे बीच कोई जूठन का भेद नहीं रहता। अपने ही भाइयों की जूठन खाना कोई बुरी बात नहीं।"

अंदर-बाहर रिमझिम वर्षा हो रही थी। बाहर बरस रहा था पानी और अंदर प्रेम। नौशाद का छोटा-सा पुत्र बार-बार मेरी पीठ पर चढ़ आता था। एक नये अनजान यात्री से उसे कोई भय नहीं था। नौशाद के साथ हमारी बातचीत प्रारम्भ हुई। मैं कई दिनों से यह महसूस कर रहा था कि इस इलाके के लोग सफाई से नहीं रहते, इसलिए मैंने नौशाद से कहा : "आप लोग सफाई से क्यों नहीं रहते? क्या कारण है कि आप लोग जहाँ बैठते हैं वहीं थूकते रहते हैं। जिस कमरे में रहते हैं उस कमरे में भी थूकते हैं। कुँओं के पास बहुत गन्दगी रहती है। स्नानघर भी बहुत गन्दे होते हैं। पाखाना जाने के बाद हाथ धोना, लोटा माँजना यह सब कोई जरूरी नहीं। एक बड़ा मटका पानी से भरा रहता है। उस पर टीन का एक मग-जैसा रखा रहता है, सब लोग आते हैं, उस मग को मटके में डालते हैं और पानी पी लेते हैं। न मग को धोने का सवाल, न माँजने का प्रश्न। लोग आम, खरबूजा, तरबूज आदि फल खाकर छिलके बजाय कहीं एक तरफ डालने के अपने सामने ही डाल देते हैं। सफाई के संस्कार ही नहीं हैं। क्यों नहीं, आप लोग इस ओर ध्यान देते?"

मेरी इस आलोचना के साथ सहमति प्रकट करते हुए नौशाद बोले : "एक तो हमारे यहाँ शिक्षा का काफी अभाव है, इसलिए गन्दगी से उत्पन्न होनेवाले रोगों के बारे में लोगों को बहुत जानकारी ही नहीं है, दूसरे ये लोग काफी रूढ़ि-ग्रस्त और दकियानूस हैं, इसलिए

वे ऐसी जिन्दगी विताते हैं। मैं आपकी बात के साथ पूरा सहमत हूँ और अपने तईं यह कोशिश भी करता हूँ कि लोगों में सफाई से रहने की आदत भी पड़े।"

हमारी चर्चा का विषय वदला और श्री नौशाद अटक नदी के बारे में कुछ बताने लगे : "यह नदी सीमांत—सूवे के और पंजाब के बीच रेखा खींचती है, इसलिए हम इस नदी को सरहद की नदी कहते हैं। सीमांत की तरफ आने के लिए इस नदी पर बना हुआ पुल ही एकमात्र मार्ग हैं।" हमने भी देखा कि यह विशालकाय नदी बड़ी तेज रफ्तार के साथ बह रही है। पानी अथाह है, परन्तु जहाँ पर पुल बना है वहाँ दो पहाड़ों के बीच में से गुजरने के कारण यह अटक नदी बहुत क्षीणकाय हो गयी है। दोनों ओर का दृश्य बहुत ही मनोरम है। पंजाब की तरफ के किनारे पर बादशाह अकबर का बनाया हुआ किला है। यह किला आज भी पुलिस के लोगों के काम आ रहा है। बेगम की सराय भी बहुत मशहूर है। "हिन्दुस्तान के पुराने इतिहास के साथ इस स्थान का गहरा संबंध रहा है। बाहर से जितने भी आक्रामक आये उनके साथ मुकाबला करने का यह पड़ाव था। अगर किसी आक्रमणकारी ने अटक नदी पार कर दी तो उसके लिए आगे बढ़ना बहुत सरल हो जाता था, इसलिए उस समय के शासक पूरी ताकत लगाकर आक्रांता को इस स्थान पर रोकने की कोशिश करते थे।" ऐसा श्री नौशाद ने बताया।

श्री नौशाद स्कूल के एक अध्यापक हैं। यहाँ भी अध्यापकों की हालत भारत के अध्यापकों से बहुत अच्छी नहीं है। कम-से-कम वेतन और ज्यादा-से-ज्यादा काम। देश का निर्माण करने की जिम्मेदारी जिन लोगों पर है उनमें अध्यापक का स्थान बहुत महत्व-पूर्ण है, परन्तु इस महत्व को आज की सरकारें समझ नहीं पातीं। इसलिए बेचारा अध्यापक रोटी के लिए भी मोहताज बना रहता है।

श्री नौशाद ने बताया कि खान अब्दुल गफ्फार खान जिस सीमान्त प्रान्त की माँग करते हैं, वह प्रान्त अटक नदी के पश्चिम से ही प्रारम्भ होता है। उनका कहना था कि हम इलाके के अधिकांश युवक खान साहब को बड़ी इज्जत की नजर से देखते हैं और वे खान साहब की कद्र, वैसे ही करते हैं जैसे आप लोग हिन्दुस्तान में गांधीजी की करते हैं। परन्तु अगर हम लोग खानसाहब के बारे में कुछ भी बात करें तो सरकार और पुलिस पीछा करने लगती है। ऐसी स्थिति में हम लोग भयभीत रहते हैं। अगर कहीं हमारा नाम सरकार की काली सूची में आ गया तो हमें हमेशा परेशान रहना पड़ेगा तथा हमारी नौकरी का भी कोई ठिकाना नहीं रह जायेगा, इसलिए हम चुपचाप रहते हैं। आप भारत से आये हैं अत: अभी एकान्त में आपसे कुछ कह रहे हैं। इससे हमें किसी बात का खतरा नहीं है, ऐसा मानकर ही मैं यह कह रहा हूँ।

हमें भी संरावाद में आते ही यह महसूस होने लगा कि मानो किसी नयी जगह में आ गये हों। वैसे पाक सरकार ने कोई अलग-अलग प्रान्त नहीं बनाये हैं। पूरे पाकिस्तान के केवल दो ही प्रान्त हैं—एक पूर्वी पाकिस्तान और दूसरा पश्चिमी पाकिस्तान।

श्री नौशाद के साथ बातचीत करके बड़ी प्रसन्नता हुई। रात भर उनके घर मेहमान बनकर ऐसा लगा मानो हम किसी चिरपरिचित मित्र के घर पर हैं।

डा० असलम मल्लिक

●

पेशावर में आप किसी से पूछिए कि दांत के डाक्टर कौन अच्छे हैं, तो बिना सोचे वह आपको उत्तर देगा : "डा० असलम मल्लिक।" यह सही भी है। वे केवल डाक्टर ही नहीं हैं, बल्कि पेशावर के एक माने हुए सेवक हैं। उनके हृदय में मानवता के प्रति जो भावना है वह निश्चय ही अनुपम है। हमें रावलपिंडी में मालूम हुआ कि पेशावर रोटरी क्लब के मन्त्री डा० असलम मल्लिक हैं। इसलिए हमने उनको एक पत्र लिखकर यह सूचना दी कि जब हम पेशावर पहुँचेंगे तब आपसे मिलना चाहेंगे। उसी पत्र के आधार पर हम जब पेशावर पहुँचे तो काबुली गेट बाजार में स्थित मल्लिक साहब के दवाखाने पर गये। ज्यों ही हम उनके यहाँ पहुँचे कि उन्होंने हमें बाँहों में भर लिया। बोले : "मैं आपकी प्रतीक्षा ही कर रहा था। मैंने आपके ठहरने का इन्तजाम पास में ही जहाँगीर होटल में कर दिया है। आप जब तक पेशावर रहें मेरे मेहमान बनकर रहें।"

उनकी इस बेतकल्लुफी ने हमें बहुत प्रभावित किया। वे कहने लगे कि इस तरह से खिदमत करने का अवसर तभी मिलता है जब खुदा बहुत राजी होता है। आपको खुदा ने ही भेजा है। वरना मेरा नाम आपको कैसे मिलता ? पेशावर में तो लाखों लोग रहते हैं। इस तरह से डा० मल्लिक ने हमारे लिए आतिथ्य का प्रबंध कर दिया। वे हमारे साथ-साथ होटल तक आये। और बोले : "आप स्नान करें। भोजन, विश्राम करें। उसके बाद मैं आपको पेशावर घुमाने ले चलूँगा।" पेशावर का नाम हमने कितनी ही बार सुना और पढ़ा

था, पर आज यहाँ आकर सचमुच आनन्द हुआ। यह रमणीय शहर है। है तो बहुत पुराना शहर, परन्तु एक खासियत है, जो मन पर स्थायी प्रभाव छोड़ देती है। नयी-नयी आबादियाँ बस रही हैं। खूबसूरत इमारतें बन रही हैं। बाजार की चहल-पहल तो अपना निराला ही स्थान रखती है।

लगभग दो घंटे के बाद मल्लिक साहब आये और वे हमें पेशावर का ऊँचा किला दिखाने के लिए ले गये। ऐतिहासिक दृष्टि से तो इस किले का महत्त्व है ही, परन्तु स्थापत्य कला की दृष्टि से भी यह किला अपना खास स्थान रखता है। चारों ओर की ऊँची-ऊँची दीवारें उस जमाने के सुरक्षा-प्रबंधों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करती हैं, जिस जमाने में यह किला बनाया गया था। घेरदार सलवार, लम्बा कुरता और ऊँची पगड़ी पहने हुए पठानों से गलियाँ और बाजार भरे हुए थे। उनके बीच में से गुजरते हुये मल्लिक साहब ने हमें बताया कि पठानों का अगर सबसे बड़ा कोई केन्द्र है तो वह पेशावर ही है। यहाँ आम लोग काफी गरीब हैं, पर अमीरों की संख्या भी बहुत बड़ी है। जैसे ढाका की मलमल मशहूर थी वैसे ही हल्का, बारीक और मजबूत कपड़ा बनाने में पेशावर के कारीगर भी बहुत प्रसिद्ध थे। ताँबे के बर्तनों पर खूबसूरत कला-कृतियाँ करने में यहाँ के कारीगर सिद्धहस्त थे। पेशावर मेहनती और कारीगर लोगों की नगरी कही जाती थी। हम लोग बड़े भाग्यशाली हैं कि पेशावर आये, जहाँ कुदरत की सुन्दरता अपने पूरे जोश में है। पेशावर के आसपास चारों तरफ फलों के बाग ही बाग हैं। फलों की इस दुनिया में जो रमणीय दृश्य मिलता है वह बहुत लुभावना है। नाशपाती और आड़ू तो पेड़ों पर झूमते रहते हैं।

श्री मल्लिक साहब को पेशावर पर बड़ा गर्व है। उन्होंने हमें पेशावर का विश्व-विद्यालय भी दिखाया। वे बोले, "पश्चिमी पाकिस्तान

डा० असलम मल्लिक

पेशावर में आप किसी से पूछिए कि दांत के डाक्टर कौन अच्छे हैं, तो बिना सोचे वह आपको उत्तर देगा : "डा० असलम मल्लिक।" यह सही भी है। ये केवल डाक्टर ही नहीं हैं, बल्कि पेशावर के एक माने हुए सेवक हैं। उनके हृदय में मानवता के प्रति जो भावना है वह निश्चय ही अनुपम है। हमें रावलपिंडी में मालूम हुआ कि पेशावर रोटरी क्लब के मन्त्री डा० असलम मल्लिक हैं। इसलिए हमने उनको एक पत्र लिखकर यह सूचना दी कि जब हम पेशावर पहुँचेंगे तब आपसे मिलना चाहेंगे। उसी पत्र के आधार पर हम जब पेशावर पहुँचे तो काबुली गेट बाजार में स्थित मल्लिक साहब के दवाखाने पर गये। ज्यों ही हम उनके यहाँ पहुँचे कि उन्होंने हमें बाँहों में भर लिया। बोले : "मैं आपकी प्रतीक्षा ही कर रहा था। मैंने आपके ठहरने का इन्तजाम पास में ही जहाँगीर होटल में कर दिया है। आप जब तक पेशावर रहें मेरे मेहमान बनकर रहें।"

उनकी इस बेतकल्लुफी ने हमें बहुत प्रभावित किया। वे कहने लगे कि इस तरह से खिदमत करने का अवसर तभी मिलता है जब खुदा बहुत राजी होता है। आपको खुदा ने ही भेजा है। वरना मेरा नाम आपको कैसे मिलता ? पेशावर में तो लाखों लोग रहते हैं। इस तरह से डा० मल्लिक ने हमारे लिए आतिथ्य का प्रबंध कर दिया। वे हमारे साथ-साथ होटल तक आये। और बोले : "आप स्नान करें। भोजन, विश्राम करें। उसके बाद मैं आपको पेशावर घुमाने ले चलूंगा।" पेशावर का नाम हमने कितनी ही बार सुना और पढ़ा

था, पर आज यहाँ आकर सचमुच आनन्द हुआ। यह एक अत्यन्त रमणीय शहर है। है तो बहुत पुराना शहर, परन्तु उसकी अपनी एक खासियत है, जो मन पर स्थायी प्रभाव छोड़ देती है। चारों ओर नयी-नयी आबादियाँ बस रही हैं। खूबसूरत इमारतें बन रही हैं। सदर बाजार की चहल-पहल तो अपना निराला ही स्थान रखती है।

लगभग दो घंटे के बाद मल्लिक साहब आये और वे हमें पेशावर का ऊँचा किला दिखाने के लिए ले गये। ऐतिहासिक दृष्टि से तो इस किले का महत्त्व है ही, परन्तु स्थापत्य कला की दृष्टि से भी यह किला अपना खास स्थान रखता है। चारों ओर की ऊँची-ऊँची दीवारें उस जमाने के सुरक्षा-प्रबंधों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करती हैं, जिस जमाने में यह किला बनाया गया था। घेरदार सलवार, लम्बा कुरता और ऊँची पगड़ी पहने हुए पठानों से गलियाँ और बाजार भरे हुए थे। उनके बीच में से गुजरते हुये मल्लिक साहब ने हमें बताया कि पठानों का अगर सबसे बड़ा कोई केन्द्र है तो वह पेशावर ही है। यहाँ आम लोग काफी गरीब हैं, पर अमीरों की संख्या भी बहुत बड़ी है। जैसे ढाका की मलमल मशहूर थी वैसे ही हल्का, बारीक और मजबूत कपड़ा बनाने में पेशावर के कारीगर भी बहुत प्रसिद्ध थे। तांबे के बर्तनों पर खूबसूरत कला-कृतियाँ करने में यहाँ के कारीगर सिद्धहस्त थे। पेशावर मेहनती और कारीगर लोगों की नगरी कही जाती थी। हम लोग बड़े भाग्यशाली हैं कि पेशावर आये, जहाँ कुदरत की सुन्दरता अपने पूरे जोश में है। पेशावर के आसपास चारों तरफ फलों के बाग ही बाग हैं। फलों की इस दुनिया में जो रमणीय दृश्य मिलता है वह बहुत लुभावना है। नाशपाती और आड़ू तो पेड़ों पर झूमते रहते हैं।

श्री मल्लिक साहब को पेशावर पर बड़ा गर्व है। उन्होंने हमें पेशावर का विश्व-विद्यालय भी दिखाया। वे बोले, "पश्चिमी पाकिस्तान

श्री मल्लिक साहब हमको प्रतिदिन अपने स्नेह की धारा में प्रवाहित करते रहे। वे प्रतिदिन हमारे पास होटल में आते। हमारे खाने-पीने की व्यवस्था स्वयं देखते। हमको उन्होंने तीन दिन तक पेशावर में रोक कर रखा। आखिर जब हमारे जाने का समय आया तो बोले: "आपके साथ अफगानिस्तान की सीमा तक मैं चलूंगा। आप मेरे साथ कार में चलें।"

मल्लिक साहब का स्नेह देख हम गद्‌गद् हो गये। हमने बताया हम जिस तरह दिल्ली से पेशावर तक पैदल आये हैं उसी तरह आगे भी पैदल ही जायेंगे। मल्लिक साहब बोले—"दिल्ली से पेशावर तक की बात अलग थी, परन्तु खैबर दर्रे से पैदल गुजरना खतरनाक है। वहां पठानों का डर है। पठान लोग हर समय अपने कन्धे पर बन्दूक रखते हैं। खैबरदर्रे का क्षेत्र 'इलाका गैर' माना जाता है, इसलिए वहां आप पैदल चलने का आग्रह न रखें। मैं स्वयं आपको अफगानिस्तान की सरहद तक छोड़कर आऊँगा। अगर आपको कहीं कोई दिक्कत आयी तो उससे मुझे बड़ा दुःख होगा।"

हमने मल्लिक साहब की बात बड़े गौर से सुनी, परन्तु हमारे लिए यह सम्भव नही था कि हम पैदल चलना छोड़कर कार से जायें। जब किसी के मन मे ज्यादा प्रेम होता है तब वह जरूरत से ज्यादा चिन्ता करने लगता है। परन्तु हमारे मन मे पठानो के प्रति कोई भय नही था। हमने कहा : "मल्लिक साहब, आपका स्नेह हम हृदय से स्वीकार करते हैं, परन्तु खैबरदर्रे को छोड देना तथा पठानो मे रहने का अवसर खो देना उचित नही होगा। अगर हम खैबरदर्रे से पैदल न गये तो उसका हमे पछतावा भी रहेगा, इसलिए आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें। हमे पैदल ही जाने दें।" हमारी इस उत्कटता को देखकर आखिर मल्लिक साहब ने हमें पैदल जाने की इजाजत दी। उन्होने दो-तीन पैकिट बिस्कुट के हमारे थैले में रख दिये। हमको रास्ते मे कहीं तकलीफ न हो, इसके लिए उन्होंने गरम चाय थर्मस मे भरकर हमे दी। पेशावर शहर की सीमा तक वे हमे छोडने आये। उनके मन मे इतना प्रेम उमडा आ रहा था कि हम यह नही समझ पा रहे थे कि किस प्रकार उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करें।

पेशावर से विदा होकर हम लोग खैबरदर्रे की यात्रा पर निकले। वास्तव मे ही यह यात्रा बडी आनन्द-दायक रही। काबुल नदी के किनारे-किनारे बहुत ही अच्छी सडक बनी हुई है। दोनो ओर चार-चार हजार फुट ऊँची पहाडियाँ तथा बीच मे से काबुल नदी और उसके साथ साथ चलने वाली सड़क बहुत हो मनोहारी दृश्य प्रस्तुत कर रही थी।

खैबरदर्रे के पठान निहायत मेहमान नवाज निकले। उनसे डरने का कोई कारण नही। हम लोग बडी आराम की यात्रा करके अफगानिस्तान की सरहद में पहुँचे, परन्तु रास्ते भर असलम मल्लिक की याद आती रही। उनके चेहरे पर हमारे लिए जो सहानु-

भूति के भाव थे उनको हम भूल नहीं पाते थे। उनके मन में हिन्दू और मुसलमान की कोई दीवार नहीं थी।

दुबले-पतले मल्लिक साहब के दिल में प्रेम और सहानुभूति का दरिया उमड़ रहा था। वे मानव को मानव के रूप में ही देखते हैं, इसलिए हिन्दू-मुसलमान, ईसाई आदि का सवाल उनके लिए गौण है। हमने तो मल्लिक साहब को बता दिया था कि हम न हिन्दू हैं, न मुसलमान हैं। न हमारी कोई जाति है और न हमारा कोई धर्म है। हम इन्सान हैं। यही हमारी जाति है और इन्सानियत ही हमारा धर्म है।

अफ़गानिस्तान

श्री स्याल साहब

●

पाकिस्तान की यात्रा पूरी करके हम लोग अफगानिस्तान के पहाड़ी इलाकों में पहुँच गये थे। एक दृष्टि से कहा जाय तो हमारी असली यात्रा अफगानिस्तान में ही प्रारम्भ हुई थी। पश्तो भाषा के कारण हम अफगानिस्तान के लोगों के लिए एकदम अपरिचित होकर चल रहे थे। एक दिन अजानंव नाम के गाँव में दोपहर का विश्राम करने के लिए हम लोग ठहरे हुए थे। पड़ाव एक स्कूल में था। यहाँ पर भोजन के समय आजाद पख्तून आन्दोलन के नेता स्याल साहब आ गये। वे पाकिस्तान के इलाके में स्थित किसी गाँव के थे, परन्तु पख्तून आंदोलन के कारण पाकिस्तानी सरकार के कोपभाजन बनकर वे पाकिस्तान से अफगानिस्तान आ गये थे, इसलिए वे हिन्दी और उर्दू अच्छी तरह से जानते थे। स्याल साहब भी अजानंव में हमारी तरह ही मुसाफिर थे। वे अपनी कार से जलालाबाद जा रहे थे। उन्होंने हमसे भी आग्रह किया कि हम उनके साथ उनकी कार में जलालाबाद चलें परन्तु हमें तो पैदल ही जाना था, इसलिए हमने स्याल साहब से कहा कि

जब हम जलालाबाद पहुँचेंगे तब आपके यहाँ आकर मेहमान बनेंगे। हमारी इस बात से स्याल साहब बहुत ही प्रसन्न हुए।

जब हम जलालाबाद पहुँचे तो हमने स्याल साहब के घर की पूछताछ की। मालूम हुआ कि जलालाबाद का लगभग प्रत्येक आदमी स्याल साहब को जानता है। 'वे तो हमारे नेता हैं।' यह बात कई जगह सुनायी पड़ी। जिस समय स्याल साहब हमसे मिले थे उस समय हमें ऐसा नहीं लगा था कि वे इतने बड़े आदमी होंगे। परन्तु जब हम उनके घर पहुँचे तो देखा कि उनके यहाँ पचासों लोगों की मजलिस जमी हुई है। स्याल साहब खान अब्दुल गफ्फार खान के साथी हैं और इस इलाके के बहुत ही लोकप्रिय नेता हैं। इसलिये पठान लोग अपने झगड़े सुलझाने के लिए भी स्याल साहब के यहीं पहुँचते हैं। स्याल साहब बड़े अतिथि-परायण हैं। बड़े-बड़े झगड़ों को बिना कोर्ट-कचहरी गये सुलझा देते हैं। फिर झगड़नेवाले लोगों को अपने यहाँ साथ बैठाकर खाना खिलाते हैं। ऐसे बुजुर्ग के घर मेहमान बनने का सौभाग्य हमें मिला।

संयोग से जब हम स्याल साहब के घर पहुँचे तब किसी झगड़े को सुलझाने के लिए पंचायत बैठी हुई थी। हमें अपनी आँखों से यह दृश्य देखने को मिला। स्याल साहब ने सारा मामला सुनकर झटपट फैसला दे दिया। यह देखकर आश्चर्य हुआ कि झगड़नेवाले दोनों तरफ के लोग स्याल साहब के फैसले को बड़ी खुशी के साथ मान गये। उन्हें ऐसा लगा कि स्याल साहब ने जो भी फैसला दिया है वही उनके हित में है।

झगड़ा सुलझाने के बाद स्याल साहब ने दोनों तरफ के लोगों को खाने के लिए आमंत्रित किया। दो ऊँची-ऊँची और मोटी ताजी बकरियाँ काटकर पकायी गयीं। हमारे सामने ही यह प्रक्रिया भी हुई। सब लोग मिलकर माँस पकाने में जुट गये। आग का एक बड़ा जगरा जलाया गया। लोहे की सलाखों पर बकरियों का माँस चढ़ा-चढ़ाकर पका लिया गया। इसके लिए किसी बर्तन की भी जरूरत

नहीं पड़ी। कोई नमक-मिर्च और मसाला भी इस्तेमाल नहीं किया गया। लोहे की सलाखों पर से पका हुआ माँस प्लेटों में परोस दिया गया और सब लोग हँसी-खुशी खाने लगे। बड़ा दिलचस्प दृश्य था। मुझ जैसे शाकाहारी के लिये तो यह अजीब भी। इस तरह से अपनी आँखों के सामने बकरियों को काटते, पकाते और खाते हुए देखना मेरे लिये नयी घटना थी। जब हमने स्याल साहब को बताया कि हम तो माँस नहीं खाते तो उन्होंने हमारे लिये तुरंत दूध, फल और रोटी का इन्तजाम कर दिया। अब्दुल गफ्फार खान की संगत के कारण स्याल साहब शाकाहार के विचार से परिचित थे, परन्तु दूसरे लोगों को हमारे शाकाहारी होने पर बड़ा अचम्भा हो रहा था। वे लोग इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि माँस के बिना कोई जिन्दा भी रह सकता है। ये लोग हमसे कहने लगे कि खुदा ने माँस मनुष्य के खाने के लिए ही बनाया है। आखिर आप गोश्त क्यों नहीं खाते? इसमें क्या हर्ज है? हमने स्याल साहब के माध्यम से लोगों को शाकाहारी होने का रहस्य समझाया और बताया कि हिन्दुस्तान में हमारे जैसे लाखों आदमी हैं, जो माँस छूते तक नहीं और वे अच्छी तरह से जिन्दा हैं।

"हमारी यह मान्यता नहीं है कि माँस खानेवाले शाकाहारियों की अपेक्षा बुरे होते हैं। इन मांसाहारी लोगों में भी प्रेम, दया, करुणा, आतिथ्य, सेवा आदि गुणों का अभाव नहीं है। मांसाहार करना कोई नीच या घृणास्पद काम है, ऐसी हमारी मान्यता नहीं है। दुनिया के सारे मांसाहारी लोग संस्कृति-विहीन हैं, नीच हैं और केवल शाकाहारी ही ऊँचे हैं, ऐसी दम्भपूर्ण मान्यता हम नहीं रखते। शाकाहार, कृषि-संस्कृति और गाय की संस्कृति अहिंसा के निकट है, इतनी ही हमारी मान्यता है।" मैंने कहा।

स्याल साहब ने स्वयं साथ चलकर हमें जलालाबाद घुमाया।

यह दस-पंद्रह हजार की आवादी का शहर है। पर वहुत ही व्यवस्थित और सुन्दर है। भारत की दृष्टि से तो यह एक वड़ा गांव या वाजार जैसा है, परंतु अफगानिस्तान में जलालावाद एक महत्वपूर्ण नगर है। खूबसूरत सड़कें तथा वाग-वगीचे बनाये गये हैं। शहर में जगह-जगह गधों पर लादकर अंगूर बेचे जा रहे थे। अफगानिस्तान एक ऐसा देश है, जहां गधे भी अंगूर खाते हैं। यहां के अंगूर वहुत ही मीठे और स्वादिष्ट होते हैं। दूसरे फलों की भी कोई कमी नहीं। स्यालसाहव ने कहा कि अगर आपकी तरह शाकाहारी वन जायें तो यहां के फलों से भी हमारा काम अच्छी तरह चल सकता है।

मैंने स्यालसाहव से पूछा कि आखिर आप लोग स्वतंत्र पख्तू-निस्तान की मांग क्यों करते हैं?

स्यालसाहव ने मेरे सवाल का उत्तर देते हुए कहा : "हम पठानों ने कभी भी किसी का शासन स्वीकार नहीं किया। हमारी कौम आजाद क़ौम मानी जाती है। हम एक करोड़ पठान अपने ढंग से अपना देश वनाना चाहते हैं। हमारी भाषा, संस्कृति, इतिहास सव स्वतंत्र रूप से विकसित हुए हैं। इसलिए हमारे उज्ज्वल भविष्य के लिए स्वतंत्र पख्तूनिस्तान का निर्माण अत्यन्त आवश्यक है।"

जलालावाद में दो दिन का समय हमने बिताया। वैसे तो हम दूसरे दिन सवेरे ही जलालाबाद से चल देना चाहते थे, परन्तु स्याल-साहव ने हमें चलने ही नहीं दिया। बोले : "आप भारत से आये हैं। भारत के प्रति हमारे हृदय में बहुत ऊँचा स्थान है। हम भारत के लोगों से, स्वतंत्र पख्तूनिस्तान का निर्माण करने के लिए सहायता चाहते हैं। भारत ने पराधीन लोगों की स्वतंत्रता के लिए सदा ही आवाज वुलन्द की है। इसलिए हमें पूरा विश्वास है कि जिस प्रकार अफगानिस्तान की जनता और सरकार हमारी मांगों का समर्थन कर रही है उसी प्रकार भारत की जनता और सरकार भी हमारा साथ

देगी। हमारे नेता खान अब्दुल गफ्फार खान आजादी के पैगम्बर हैं। वे गांधीजी की तरह ही पूरी तरह से शांतिवादी तथा अहिंसावादी हैं। हिन्दुस्तान की आजादी के लिए हम सबने जी-जान लगाकर कोशिश की थी। अब पख्तूनिस्तान की आजादी की लड़ाई में भी हमें अपना जीवन लगा देना है।"

डा० काकार

●

जलालाबाद से काबुल तक की पर्वतीय यात्रा का आनन्द लेकर हम जब काबुल विश्वविद्यालय पहुँचे तो हमें लगा मानो हम विद्या के मंदिर में पहुँच गये हैं। जब काबुल विश्वविद्यालय की नयी और खूबसूरत इमारतों को पार करके हम विज्ञान-विभाग में पहुँचे और विज्ञान-विभाग के अध्यक्ष डा० काकार से भेंट की तो हमारे आनन्द का कोई ठिकाना नहीं रहा।

ऊँचा ललाट, लम्बा कद, गम्भीर आँखें, विनम्र और मिलनसार स्वभाव तथा विश्वशांति के प्रयत्नों में निरन्तर अभिरुचि रखनेवाले डा० काकार का व्यक्तित्व जितना सरल-सीधा है उतना ही आकर्षक भी। अफगानिस्तान-अणुशक्ति आयोग के अध्यक्ष होने के कारण

मानव जाति की वैज्ञानिक प्रगति में उनका योगदान सहज प्राप्त हो रहा है। पर डा० काकार इस बात के प्रति आशंकित हैं कि विज्ञान की शक्तियों पर राजनीतिज्ञों का प्रभुत्व है, इससे कहीं विज्ञान का दुरुपयोग न हो जाये। वे इस खतरे के प्रति पूरी तरह सावधान हैं और इस दिशा में पूरजोर प्रयत्न कर रहे हैं कि आणविक शक्तियों का इस्तेमाल मानव-जाति के विनाश के लिए नहीं, बल्कि उसकी शांतिपूर्ण प्रगति के लिए ही किया जाये।

हमारी बातचीत के दौरान डा० काकार बोले : "रूस और अमेरिका मिलकर रोटी, कपड़े के लिए मोहताज इस दुनिया का करोड़ों-अरबों रुपया अणुशस्त्रों की प्रतियोगिता पर खर्च कर रहे हैं, यह मानवता के साथ द्रोह है।"

"शांति यात्रियो, इस देश में आपका स्वागत है।" ऐसा कहकर डा० काकार ने हमारी आगवानी की। हमारी पैदल यात्रा के प्रति उन्हें बड़ी दिलचस्पी थी। भारत में पदयात्रा की बात भले ही विस्मयजनक न मानी जाती हो, लेकिन बाहर के देशों में इस तरह लम्बी दूरी तक पैदल सफर करना सर्वथा नवीन उपक्रम है। इसलिए डा० काकार ने बड़ी उत्सुकता के साथ पूछा : "कैसे चलते हैं ? कहाँ ठहरते हैं ? लोगों का व्यवहार कैसा है ? आपको दिक्कत तो नहीं आती ? गाँवों में आपको भोजन मिलता है या नहीं ?" हमने डा० काकार को इन छोटे-छोटे सवालों का विस्तार से उत्तर दिया।

मैंने डा० काकार को बताया : "गाँवों के लोग यह जानकर प्रसन्न होते हैं कि भारत जैसे दूर देश के यात्री पैदल चलकर हमारे यहाँ आये हैं। इसलिए हमें गाँवों के लोगों के साथ कोई दिक्कत पेश नहीं आती। मनुष्य सब जगह एक ही जैसे हैं और वे समान रूप से शांति चाहते हैं, यह हमारा अनुभव है।"

श्री काकार बोले : "यह बिल्कुल सच है, दुनिया के लोग वस्तुतः शांति चाहते हैं। वास्तविकता तो यह है कि रूस और अमेरिका की जनता ही नहीं, बल्कि वहाँ के राज्याधिकारी भी शांति चाहते हैं, परन्तु मुसीबत यह है कि वे एक-दूसरे पर विश्वास खो बैठे हैं। अब सवाल यह बन गया है कि पहले कदम कौन आगे बढ़ाए ?"

भारत और अफगानिस्तान के संबंधों की मधुरता की बात भी आयी। श्री काकार बोले कि भारत और अफगानिस्तान आज के मित्र नहीं हैं, बल्कि हमारी मित्रता ऐतिहासिक है, सांस्कृतिक है। आज जो राजनैतिक परिस्थितियाँ हैं उनमें भी भारत और अफगानिस्तान के हित समान हैं। हमारा देश कम्युनिस्ट नहीं है। हम रूस की सरहद पर हैं, फिर भी हमने भारत की तरह स्वतन्त्र एवं तटस्थ विदेश-नीति अपनायी है। अफगानिस्तान के लोग बहादुर और आजादी-पसन्द होते हैं। वे अपनी आजादी की रक्षा अपने ही बल पर करना चाहते हैं। अमेरिका प्रेरित और संचालित सैनिक संगठनों में शामिल होकर हम अपनी आजादी की रक्षा अपने बल पर नहीं कर सकेंगे। इसलिए नेहरू ने स्वतन्त्र और तटस्थ विदेश-नीति का जो विचार एशिया एवं अफ्रीका के देशों के सामने रखा है वह निश्चय ही महान है।

अफगानिस्तान की प्रगति के बारे में विचार व्यक्त करते हुए डा० काकार बोले—"हमारे देश में अभी शिक्षा धीरे-धीरे बढ़ रही है। हमारे यहाँ के लोग पढ़े लिखे कम हैं, परन्तु वे बड़े स्वाभिमानी हैं। इसलिए हमारा देश निश्चय ही जल्द तरक्की करेगा।"

डा० काकार ने बातचीत के दौरान हमसे पूछा कि आपको अफगानिस्तान की यात्रा में कोई कष्ट तो नहीं हो रहा है न। अगर आपको किसी भी तरह की मदद चाहिए तो मैं हरदम तैयार हूँ। हमने कहा : "हम पूरी तरह आप लोगों पर यानी आम लोगों की

सहायता और सहानुभूति पर ही निर्भर हैं। हम अपने साथ पैसा नहीं रखते और किसी दूसरी मदद की हमें जरूरत नहीं है। आप लोगों की दुआ हमारे साथ रहे, यही हमारी कामना है।"

अपने काबुल निवास के दौरान डा० काकार के साथ की मुलाकात से मैं बेहद प्रभावित हुआ। वैसे काबुल शहर ने भी मुझे कम प्रभावित नहीं किया। केवल आबोहवा की दृष्टि से ही नहीं, लोगों के प्रेमपूर्ण व्यवहार की दृष्टि से भी। हम काबुल में एक भारतीय व्यापारी श्री रामलाल आनन्द के घर पर ठहरे थे। वैसे श्री आनन्द ने हमको काबुल के आसपास भी काफी घुमाया। खरगालेक (सरोवर) पर बिताया हुआ समय तो भुलाया ही नहीं जा सकता। काबुल से पाघमान जाते हुए रास्ते में यह लेक पड़ता है। इस लेक में नौका-विहार करने का आनन्द भी निराला ही है। जिस प्रकार पाघमान में दर्रा और तप्पा नाम के खूबसूरत बगीचों में घूमने के आनन्द का वर्णन शब्दों द्वारा सम्भव नहीं उसी तरह खरगा सरोवर के किनारे पर बिताये हुए क्षणों की मस्ती का वर्णन भी कठिन ही है। जहां प्रकृति दोनों हाथों से अपना सौंदर्य बिखेर रही हो वहां मनुष्य बस मुग्धभाव से उसे देखता ही रह जाता है। एक ओर काबुल की यह प्राकृतिक छटा तथा दूसरी ओर डा० काकार के हृदय का स्नेह। दोनों ने मिलकर हमारे काबुल-प्रवास को तरोताजा कर दिया।

दिल्ली से काबुल तक पैदल आना भले ही बहुत लम्बा मालूम देता हो, लेकिन वास्तव में दिल्ली से काबुल कोई दूर नहीं है। लगभग ८०० मील का यह रास्ता मोटर से दो-तीन दिन में पार किया जा सकता है। एक बार काबुल के खरबूजे, सरदे, अंगूर और दूसरे सूखे मेवे खा लेने के बाद काबुल आने की इच्छा बार-बार होती है। खासतौर से रामलाल आनन्द जैसे मेजबान और डा० काकार जैसे सहृदय मित्र मिल जायें तब तो और भी अधिक।

ईरान

ईरान के
मोहम्मद रजा पहलवी

●

'शाह सैनी खूब मस्त।' यह वाक्य ईरान की यात्रा करते हुए हमने हजारों बार सुना। लोग शाह की तारीफ करते थे। उन्हें अपने शाह पर गर्व था। जब हम ईरान के रेगिस्तानों में सौ-तीस मील तक बिना कुछ खाये-पिये चल रहे थे तब हमने यह नहीं सोचा था कि तेहरान पहुँचने पर हमारी मुलाकात वहाँ के शाह के साथ भी होगी। हम जहाँ भी ठहरते वहाँ बादशाह का खूबसूरत चित्र लगा हुआ देखा करते थे। अलग-अलग ढंग के चित्रों में हम बादशाह के व्यक्तित्व का अध्ययन किया करते थे। उनके चेहरे से गम्भीरता और सादगी का प्रभाव मन पर पड़ता था। जब हम तेहरान पहुँचे तो हमने बादशाह के नाम एक खत लिखा और अपना परिचय देते हुए उनसे निवेदन किया कि वे हमें मिलने का समय दें। हमारे खत के उत्तर में बादशाह के मजोरेदरबार ने हमें आमन्त्रित किया और हमारे साथ लगभग एक घंटे तक बातचीत करके हमारे उद्देश्यों की जानकारी प्राप्त कर ली। फिर वे बोले कि मैं बादशाह के सामने पूरी बात पेश कर दूँगा और बाद में जो भी निर्णय होगा उससे आपको सूचित करूँगा।

हमारी इस मुलाकात के दो दिन बाद भारतीय दूतावास के एक अधिकारी के माध्यम से हमको सूचित किया गया कि बादशाह बड़ी प्रसन्नता के साथ हमें अपने महल में आमंत्रित करते हैं। साथ ही बादशाह के महल में जाने के लिए जो नियम होते हैं, वे भी बताये गये।

आपको बादशाह से भेंट करने के लिये काला सूट पहनकर आना होगा। यह शाही दरबार की परम्परा है। यह सूचना वजीरे-दरबार की ओर से हमें दी गयी। जब हम वजीरेदरबार से रू-ब-रू मिले थे तब ऐसी कोई बात नहीं आयी थी। हम अपना सादा कुर्ता, पाजामा पहनकर ही उनसे मिले थे। जब हमें उपर्युक्त सूचना दी गयी तब हमने भारतीय दूतावास के प्रथम सचिव से कहा कि हम भारत से पैदल चलकर इस खूबसूरत नगरी तेहरान तक यही कुर्ता, पाजामा पहनकर पहुँचे हैं। हजार-हजार ईरानी जनता से हम इसी वेश में मिले हैं। ईरान के बादशाह के दरबार में भी हम इसी वेश-भूषा में जायंगे। बादशाह से मिलने हम जा रहे हैं, हमारा वेश नहीं।

हमारी यह बात सुनते ही हमारे पास बैठे एक भारतीय मित्र ने कहा : "आप क्यों चिंता करते हैं, मैं आपके लिये और आपके साथी के लिये काले सूट का प्रबंध कर दूंगा।" मैंने तुरंत प्रतिवाद किया : "नहीं, सवाल काले सूट के प्रबंध का नहीं है, सवाल तो विचारों और सिद्धांतों का है। हम एक भी पैसा जेब में रखे बिना दिल्ली से यहाँ तक आ पहुँचे। मेजबानों पर उतना ही बोझ डालते हैं जितना अत्यन्त अनिवार्य हो। हम नहीं चाहते कि हमारे लिये किसी को अनावश्यक खर्च का बोझ उठाना पड़े। हम बादशाह से मिलने के लिए आपसे ब्लैक सूट खरीदने के लिए कहें, क्या यह उचित है ?" आखिर दूता-वास के सचिव को भी, जो बहुत खूबसरत सूट पहने हुए थे, हमारी बात ने प्रभावित किया। वे बोले : "आप लोग ठीक कहते हैं। आप

जो कपड़े भारत में पहनते हैं वही कपड़े पहनकर बादशाह से मिलें। यह बात वज़ीरेदरबार को स्वीकार होनी चाहिये।"

हमने अपने मन में यह तय किया था कि यदि दरबार की तहज़ीब के नाम पर हमें फिर भी काले सूट में आने के लिये ही कहा जायेगा तो हम शाह से मिलने का विचार ही छोड़ देंगे, लेकिन किसी से सूट की भीख नहीं माँगेंगे। दूतावास के सचिव ने सारी बात वज़ीरेदरबार के सामने रखी। अजीब मामला था। इस तरह की बात पहले शायद ही कभी उठी हो। बहुत सोच-विचार के बाद यह सूचना दी गयी कि हम अपना कुर्ता-पाजामा पहनकर बादशाह से मुलाकात कर सकेंगे। हमारे मेज़बान ने उसी दिन हमारे कपड़े लाण्ड्री में धुलवाए। मेरा कुर्ता तो कमर के पास से थोड़ा फट भी गया था। काबुल से तेह-रान तक उसने साथ दिया था। मेरे पास वही एक कुर्ता था। इसलिये मजबूरी थी।

ईरान के गरीब लोगों की झोपड़ियों में हम अपनी रातें गुज़ारते थे। हमने थोड़ा-थोड़ा फारसी बोलना भी सीख लिया था। उमर खैय्याम, शेख सादी और फिरदौसी जैसे कवियों को जन्म देनेवाली ईरान की धरती ने हमें बड़ी प्रेरणा दी। फारसी गलीचों की कला ने हमारे मन में कला-प्रेम का संचार किया। इस कला और कविता की भूमि में स्वयं ईरान के शाह ने अपने दरबारी नियमों के प्रतिकूल कुर्ता-पाजामा पहनकर आनेवाले हम दो भारतीय युवकों का अपने महल में स्वागत करना स्वीकार किया।

मिलने का समय हमें १ बजे दिया गया था। कहा गया था कि आधा-घण्टा पहले ही हमें पहुँच जाना चाहिये, इसलिये हम लग-भग साढ़े-बारह बजे ही बादशाह के महल पहुँच गये। बहुत खूब-सूरत महल था। चारों ओर फूलों की क्यारियाँ-लॉन, महल के चारों ओर काफी कड़ा पहरा था। हर दस कदम पर कोई न कोई सिपाही

हाजी रहीमी रजावी

ईरान की एक ठंडी सुबह। बादलों से भरा हुआ आकाश और शीत-लहरी से भरी हुई धरती। हम दोनों यात्री सिर से पैर तक सारे शरीर को गरम कपड़ों से ढँककर सड़क पर चल रहे थे। उस भयंकर ठंडी में सड़क पर चलने का साहस शायद ही कोई करे। जब सांय-सांय करती हुई हवा रुकने का नाम नहीं लेती तो हम ही क्यों रुकें? अगर हम चलना रोक देते तो हाजी रहीमी रजावी से मुलाकात कैसे होती?

एक छोटी जर्मन कार का हॉर्न हमारे कान में पड़ा। हमने मुड़कर देखा। कार में से एक पुरुष और एक स्त्री हमसे पूछ रहे हैं: "कहाँ जायेंगे।"

"हम गाजविन जा रहे हैं। वहाँ से आगे रूस की तरफ जायेंगे।"

"हमारा यह उत्तर सुनकर महिला ने बहुत मधुर स्वर में कहा : "हम भी गाजविन जा रहे है। बहुत तेज सर्दी है। कार में बैठ जाइये।

हमने बताया, हम भारत से यहाँ तक ढाई हजार मील पैदल चलकर आये हैं और मॉस्को तथा वाशिंगटन तक इसी तरह पैदल चलने का हमारा प्रण है।

"ओह! हमने अखबार में आपके बारे में पढ़ा था। आप अणुशस्त्रों के विरोधी, शांतियात्री हैं।" पुरुष यह कहते-कहते कार से बाहर निकल आये। ये थे रहीमी रजावी। गाजविन शहर के प्रतिष्ठित नागरिक। रहीमी ने कहा— "आपकी बात ठीक है, पर कार में चलो न? किसी को पता नहीं चलेगा। यहाँ कौन देखता है? मैं भारत के लोगों से जाकर यह कहूँगा नहीं कि आपने पदयात्रा भंग कर दी थी। अभी गाजविन पचीस मील दूर है। घंटे भर में पहुँच जायेंगे। वरना इस सरदी में दो दिन चलना पड़ेगा।" हाजी साहब की इस भोली बात पर हमें हँसी आयी। उनके हृदय में हमारे प्रति सहानुभूति थी।

"दो दिन नहीं, हमें तो दो साल इसी तरह चलना है। किसी देखनेवाले के लिये हम पैदल नहीं चलते। कोई देखे या न देखे, इससे हमें सरोकार नहीं। हम स्वयं अपनी इच्छा से और अपने निर्णय के आधार पर पैदल सफर कर रहे हैं। यदि हम आपकी कार में चलें तो हमें कोई रोकनेवाला भी नहीं।"

उनसे काफी देर बातें हुई। उन्होंने पूछा : "आप लोग कौन हैं? भारत में क्या करते हैं?"

"हमने बताया, "हम गांधी के सिपाही हैं और भारत में समाज-सेवा का काम करते हैं।"

रहीमी ने तुरंत अपनी पत्नी से कहा, "ओह ! ये उस गांधी के सिपाही हैं जिस गाँधी ने भारत की आजादी के लिये सप्ताहों तक अन्न नहीं खाया। ये किसी तरह कार में नहीं चलेंगे।"

उनकी पत्नी ने कहा : "अच्छा गाजविन में आप आयेंगे तो हमारे अतिथि बनने की कृपा करें।"

श्री रहीमी ने कहा : "मुझे तो इतनी-सी देर में सरदी से परेशानी हो रही है। ठिठुर रहा हूँ। ज्यादा देर खड़े नहीं रह सकता। कल आप हमारे घर आएँ। वहीं ठहरें। विस्तार से बातें होंगी।"

दूसरे दिन हम श्री रहीमी के घर पहुँचे। उनके घर का वातावरण बहुत प्रसन्न और आकर्षक था। जब हम पहुँचे तो वे सायंकाल की नमाज पढ़ रहे थे। उनका सिर नीचे झुका हुआ था। नमाज में खलल न पड़े, इस खयाल से हम बाहर बरामदे में ही खड़े हो गये। ज्यों ही श्री रहीमी ने सिर ऊपर किया कि खिड़की में से हम उन्हें दिखायी पड़े। न जाने उन्हें कैसा भावोद्रेक हुआ कि नमाज को बीच में ही छोड़कर वे बाहर आये और उन्होंने हमें अपनी बाँहों में भर लिया। हमने जब उनसे क्षमा माँगी कि आपकी नमाज में हमारे कारण व्यवधान हो गया तो कहने लगे : "हमारे पैग़म्बर ने सचाई पर चलनेवालों को खुदा का बन्दा कहा है। जब हमने पिछले दिन आपसे कहा था कि कार में हमारे साथ चलिए, किसी को पता नहीं चलेगा, फिर भी आप कार में नहीं आये। आप सत्य पर चलनेवाले हैं। आप जैसे मेहमान का स्वागत करना ही सच्ची नमाज है।"

हाजी रहीमी अत्यन्त विनोदप्रिय और अतिथिप्रेमी थे। वे अपने बाल-बच्चों को जितना प्यार करते हैं उतना ही उनका आदर भी करते हैं। शहनाज और महनाज़ नाम की दोनों पुत्रियां हमारे आतिथ्य में जुट गयीं। दोनों पुत्रियां बहुत ही सुन्दर और भद्र थीं। ईरान की स्त्रियां होती ही सुन्दर हैं। अब बुरका प्रथा लगभग समाप्त

हो रही है। यहाँ की युवतियाँ पाश्चात्य ढंग की वेश-भूषा पहनने लगी हैं। शहनाज और महनाज भी बड़ी खूबसूरत हैं। न बहुत काली और न पश्चिम के लोगों की तरह जरूरत से ज्यादा गोरी। इस तरह का बीच का रंग ज्यादा सलोना और आकर्षक लगता है।

हमारे खाने-पीने की शानदार व्यवस्था और तैयारी की गयी। मुर्गे पकाये गये। ईरानी ढंग का कबाब पकाया गया। पर जब हाजी साहब ने हमें खाने-पीने के बारे में पूछा तब हमने बताया कि हम तो मांसाहार से पूर्णतः परहेज करते हैं। इस पर सभी घरवालों को बड़ा आश्चर्य हुआ। श्री हाजी साहब अपने बच्चों की तरफ मुखातिब होकर कहने लगे; "ये गांधी के सिपाही हैं। शांति का प्रचार करने के लिए घर-द्वार से दूर कितने कष्ट उठा रहे हैं। पैदल चलना, पैसा साथ न रखना, सिगरेट नहीं, मांस नहीं। ऐसे युवकों की भावना अवश्य सफल होगी। ऐसे अतिथियों की सेवा का अवसर हमारे लिए निश्चय ही एक ऐतिहासिक महत्त्व की घटना है।" फिर हमारे लिए बादाम, अखरोट, किशमिश, पिश्ता, सेब, सन्तरे आदि की तैयारी हुई। दूध मँगाया गया। खास तरह की ईरानी रोटी, जिसे 'नान' कहा जाता है, परोसी गयी।

'नान' बनाने के बीसों प्रकार होते हैं। एक नान दो तीन हाथ लम्बी होती है और हर मोहल्ले में 'नान' बनानेवालों की दुकानें होती हैं। घर में 'नान' नहीं बनायी जाती। इसलिए ताजी रोटियाँ खाने की हिन्दुस्तानी आदत को तो हमें भूल ही जाना पड़ा।

हाजीसाहब का घर क्या, स्नेह का दरिया था। दूसरे दिन हमारे विदा होने का समय आया तो श्रीमती रहीमी बोली : "कल शाम को आये और आज सुबह चल दिये। ऐसी भी क्या जल्दी है।" हमारे बहुत अनुनय आग्रह के बाद प्यार भरे दिल से पूरे परिवार ने हमें विदा किया। लग रहा था मानों हम अपने ही घर से विदा हो रहे हों।

हमारी जेवों में संतरे और सेव भर दिये, रास्ते के लिए। हम
चल पड़े।

हम रास्ते में चल ही रहे थे कि क़रीव वारह वजे पूरे परिवार के
साथ हाजीसाहव अपनी कार में आकर गाजविन से ८ मील दूर हमें
मिले। उन्हें देखकर हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। हाजी साहव
बोले : "रास्ते पर कोई गाँव नहीं। दोपहर को आप भोजन कहाँ
करेंगे, इसकी मुझे चिन्ता हुई। सोचा—क्यों न आपके साथ पिकनिक
का रास्ते में आयोजन करें।" हम कुछ न कह सके। लगा मानो हम
अपनत्व और प्यार की गंगा में पिकनिक कर रहे थे।

कहाँ भारत और कहाँ ईरान! पर मानवीय स्नेह की धारा सर्वत्र
समान है।

सोवियत-संघ

केवोर्क ग्रामीन
दमीज़ियान

●

ईरान की यात्रा पूरी हुई। सोवियत-संघ में हमने प्रवेश किया। सोवियत संघ की यात्रा करने का यह अवसर हमारे लिए एक विशेष महत्व का अवसर था। जो देश लोह-आवरण के पीछे माना जाता है उस देश में गांव-गांव में पैदल चलकर जाने का और आम लोगों से खुलकर मिलने एवं बातचीत करने का मौका मिले यह कोई साधारण बात नहीं थी। इसलिए सोवियत संघ में अपने आपको पाकर हम विशेष प्रसन्नता अनुभव कर रहे थे। खासतौर से आरमेनिया के सुप्रसिद्ध साहित्यकार और कवि केवोर्क ग्रामीन दमीज़ियान जैसे लोगों के साथ मिलकर हमें और भी अधिक प्रसन्नता हुई।

आरमेनिया सोवियत संघ का एक महत्वपूर्ण गणराज्य है। एक तरफ अरारोट पर्वत और दूसरी ओर काकेशस पर्वत। इन दोनों के बीच बसा है यह सुन्दर प्रांत। हम आरमेनिया की राजधानी येरेवान में पांच दिन रहे, सोवियत शांतिपरिषद् के अतिथि के रूप में।

सरकारी हैं। किताबों पर मुनाफा कमानेवाला कोई व्यापारी नहीं, इसलिए हिसाब-किताब में कोई गड़बड़ी पैदा नहीं होती। लेखक का शोषण करके पैसा बचाने जैसी बात हम सोच भी नहीं सकते।" श्री दमीजियान की यह बात सुनकर मुझे हिन्दुस्तान के बेचारे साहित्यकार की याद आयी। उसे व्यवसायी प्रकाशकों के शोषण का किस तरह शिकार होना पड़ता है।

श्री दमीजियान की पत्नी भी बड़ी स्नेहशीला थीं। उनका पुत्र स्कूल में पढ़ता है। अपने पुत्र के बारे में चर्चा करते हुए कवि महोदय ने बताया :

"हमें बच्चों को पढ़ाने-लिखाने की कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ती। पहली कक्षा से लेकर ऊँची-से-ऊँची पढ़ाई हमारे यहाँ मुफ़्त होती है। हाई स्कूल पास करने के बाद तो प्रत्येक विद्यार्थी को सरकार की तरफ से इतनी छात्रवृत्ति मिलती है कि विद्यार्थी अपना खर्च अच्छी तरह चला सके। ज्यादातर विद्यार्थी हाई स्कूल के बाद अपने माँ-बाप के साथ नहीं रहते। कॉलेज के हॉस्टल में रहते हैं। अगर अपने ही शहर में पढ़ते हों तब भी वे हॉस्टल में रहना ही ज्यादा पसन्द करते हैं और रविवार के दिन माँ-बाप से मिलने घर चले आते हैं। हमें बच्चों की चिन्ता से सरकार ने मुक्त कर दिया है।" उसके बाद श्री दमीजियान ने अपने वृद्ध माता-पिता से भी परिचय कराया। परिचय कराने के साथ ही उन्होंने यह भी बताया : "माता और पिता दोनों के लिए सरकार से पेन्शन मिलती है। हमारे देश में पचपन साल के बाद प्रत्येक स्त्री को और साठ साल के बाद प्रत्येक पुरुष को सरकार बुढ़ापे की पेंशन देती है। इसलिए मुझ पर अपने माता-पिता का कोई भार नहीं है। संयोग की बात है कि मेरी पत्नी भी काम करती है। रूस में लगभग ८० प्रतिशत स्त्रियाँ काम करती हैं। वे घर आकर चौके, चूल्हे को भी सम्हालती हैं। इस तरह मेरा घर पूरी तरह स्वावलम्बी है। अगर किसी साल मेरी पुस्तक कम बिके तो भी मुझे दिक्कत आनेवाली नहीं है।"

श्री दमीजियान का यह वर्णन सुनकर मैं आश्चर्य करने ल[illegible] एक नई समाज-व्यवस्था का नमूना देखने को मिला। इस तरह परिवा[illegible] केवल स्नेह के आधार पर इकाई बना हुआ है। आर्थिक संबंधों का महत्त्व ज्यादा नहीं है।

कुमारी ल्योवा

येरेवान से विदा होकर हम आरमेनिया के गाँवो मे यात्रा करने लगे। कुमारी ल्योवा से भी मेरी मुलाकात एक छोटे गाँव में ही हुई। आरमेनिया की यह शिक्षित सुन्दर तरुणी भारत के बारे मे बहुत दिलचस्पी रखती थी। कुमारी ल्योवा से मिलने का प्रसग मेरे लिए अविस्मरणीय बन गया। वैसे तो पूरा का पूरा आरमेनिया प्रदेश ही मेरे लिए अविस्मरणीय है। सेबो के बडे बडे बगीचो मे काम करनेवाली नटखट बालाओ से लेकर १०० वर्ष से भी अधिक जीनेवाले वृद्ध किसानो तक, सबके जीवन में एक लुभावनी मस्ती और अल्हडता मैंने देखी। लकडी के बने छोटे-छोटे सुदर घरों मे रहनेवाले मेहनती किसान शरीर के बडे बलवान और दिल के बड़े विशाल होते हैं।

हम श्री सेमोनियान के अतिथि थे। जब हम श्री सेमोनियान से बातचीत करते हुए पैर धोने की तैयारी करने लगे तो एक ओर क्षितिज की खिड़की से अस्त होते हुए सूरज की किरणें झांक रही थी तथा

चलती रही। भारत और आरमेनिया की अतिथि-सत्कार-संबंधी परम्पराओं का विश्लेषण होता रहा। ल्योपा पैर धोने और पोंछने में व्यस्त थी, पर मेरी नजरें ल्योपा के हर अंग पर दौड़ लगा रही थीं। वह घुटने टेक कर बैठी थी। काले रंग की ऊनी स्कर्ट और जाकेट में उसके गोरे शरीर का एक-एक अंग थिरक रहा था। बात ही बात में यह मालूम हुआ कि ल्योपा हाई स्कूल में अंग्रेजी की अध्यापिका है।

"आपने मेरी सेवा स्वीकार की। मेरे आग्रह का मान किया। मुझे गौरव प्रदान किया। कृतज्ञ हूँ मैं।" यह कहते हुए ल्योपा खड़ी हो गयी। बखतांगी को उसने पानी का जग और तौलिया स्नान घर में रखने के लिए भेज दिया। पूरे कमरे में ल्योपा और मैं रह गया। मैंने ल्योपा को धन्यवाद दिया। हम दोनों की निगाहें टकरायीं।

हमारे स्वागत में भोजन की तैयारियाँ प्रारम्भ हुईं। भोजन की टेबल पर गाँव के पन्द्रह-बीस प्रमुख व्यक्ति आमंत्रित थे। कुमारी ल्योपा ने आरमेनियन भोजन का परिचय देते हुए कहा : "आपके लिए हमने शाकाहारी भोजन बनाया है। यह देखिए 'हाचापूरी' नाम की नमकीन रोटी है, जो पनीर डालकर बनायी गयी है और यह देखिए 'रागू' जो एक रूसी व्यंजन है, और विविध सब्जियों से बनाया गया है।" ल्योपा ने मछली और कई प्रकार के मांस भी टेबल पर सजाये और बोली : "यह आपके लिए नहीं है। मैं जानती हूँ भारत के शाकाहारियों को। आपके लिए दूध, बादाम, किशमिश और सेब को मिलाकर एक खास चीज बनायी गयी है।"

हम लोग भोजन की टेबल पर बैठे। आरमेनियन परम्परा के अनुसार टेबल के अध्यक्ष का निर्वाचन किया गया। भोजन की टेबल पर जब तक अध्यक्ष का चुनाव न किया जाय तब तक खाना-पीना प्रारम्भ नहीं हो सकता। अध्यक्ष मदिरा का प्याला हाथ में लेकर टोस्ट की घोषणा करते हुए टेबल के अन्य सदस्यों के साथ एक-दूसरे

के स्वास्थ्य की कामना करने लगे। अध्यक्ष ने टोस्ट का उच्चारण करते हुए कहा : "आज हमारी बस्ती के लिए विशिष्ट दिन है। हमारे गाँव के इतिहास में यह पहला अवसर है कि ये दो भारतीय अतिथि हमारे यहाँ आये हैं। इन अतिथियों के स्वास्थ्य और भारत तथा सोवियत-संघ की स्थायी मित्रता के लिए हम मदिरा का यह प्याला पीते हैं।" मदिरा से भरी प्यालियाँ खनखना उठीं। सब लोग खड़े हो गये। मेरे ठीक बगल में ल्योपा थी। उसने मेरे हाथ में मदिरा का प्याला पकड़ा दिया।

मदिरा पीना बहुत कठिन था। जीवन में मदिरा कभी छुई भी नहीं। हमने अध्यक्ष महोदय से नम्रतापूर्वक क्षमा माँगी, पर ल्योपा जो हमारे दुभाषिये का काम कर रही थी; बोली : "जीवन के एक अल्हड़ आनन्द से आप लोग वंचित ही रह गये।" अध्यक्ष महोदय ने भी आग्रह करते हुए कहा : "हमारी मित्रता के नाम पर आज तो आपको पीना ही होगा।" श्री सेमोनियान ने भी आग्रह किया। बड़ी मुश्किल का सामना था। कभी हम मदिरा की प्याली की ओर निहारते तथा कभी लोगों की ओर। चारों ओर चुप्पी छा गयी। सभी लोग बहुत भावुक बनते जा रहे थे। ल्योपा ने हमें बताया : "सब लोग कह रहे हैं कि अगर आप नहीं पीयेंगे तो यहाँ पर उपस्थित कोई भी व्यक्ति नहीं पीयेगा।" हमारा कोई तर्क नहीं चल रहा था। लोगों ने हमें समझाया कि मदिरा तो शुद्ध शाकाहारी है। बड़ा धर्म संकट था। एक तरफ हमारे अब तक के संस्कार और दूसरी तरफ यह आग्रह, ल्योपा का अनुनय ! कुछ निर्णय करें कि हमने देखा, सब लोगों के हाथ ऊपर उठे हैं। केवल हमारे हाथ ऊपर उठने भर की देरी थी। कुछ भी सोचने और निर्णय करने की स्थिति में नहीं थे। अपनी आदतों और इस वातावरण के बीच हम खड़े थे। आखिर हमारा हाथ भी ऊपर उठा। सबने जोर से टेबल थपथपायी। एक जबर्दस्त हर्ष-ध्वनि हुई और मदिरा का प्याला हमारे अधरों तक पहुँच गया। दो घूंट गले के नीचे उतर ही तो गये।

पेक्षित बातों पर ल्योषा को जरूर आश्चर्य हुआ होगा। इतने में अचानक कमरे में किसी की आहट पाकर हम चौंक पड़े : "कहीं पिताजी तो नहीं आ गए।" ल्योषा ने कहा। पर यह तो वखतांगी था। बोला : "दीदी, माँ ने अतिथि के लिए दूध भेजा है।" दूध का गिलास टेबल पर पानी के पास ही उसने रख दिया। फिर कहा : "दीदी, मुझे नींद आती है। मैं सोने जा रहा हूँ।" और वह भाग गया। हम फिर अकेले हो गये। मौन और शांत।

"पर दूध के लिए अब पेट में जगह कहाँ ?" मैंने चुप्पी भंग करते हुए कहा :

"जगह हो या न हो, यह तो आपको पीना ही होगा।"

"पर इसमें दो हिस्से करने होंगे।" एक मेहमान के लिए, दूसरा मेजबान के लिए।"

"पर एक दिन के मेहमान का मैं कैसे विश्वास करूँ ?" ल्योपा ने न जाने क्या सोच कर कहा।

मुझे इस बात पर आश्चर्य हो रहा था कि किस तरह हम इतनी जल्दी एकदूसरे के निकट खिचे चले आ रहे थे। क्यों एक कशिश सी पैदा हुई जा रही थी। इतने में ल्योपा के पिता ने पुकारा : "बेटी अतिथि के कमरे में अभी तक प्रकाश क्यों है ? वे बहुत थके हैं। एक बज गया है। उन्हें सोना चाहिए।" जल्दी से उठते हुए ल्योपा ने कहा : "वे दूध पी रहे हैं पिताजी।"

ल्योपा ने मुझसे कहा : "अब सो जाओ सतीश, मैं जाती हूँ।"

"आधा दूध तुम्हें पीना ही होगा ल्योपा।" कहीं ल्योपा झट-से चली न जाय, इस घबड़ाहट में मैंने उसका हाथ पकड़ कर कहा।

"अच्छा बाबा, पीऊँगी।"

"लो पीओ।"

"पहले तुम पीओ न।"

"नहीं, पहले तुम।"

"पहले तुम।" ल्योपा ने प्यार से आग्रह किया। मैंने आधा दूध पीकर गिलास ल्योपा को थमा दिया।

"अब तो जाऊँ न।" दूध का गिलास खाली करते हुए ल्योपा ने कहा और वह चली गयी। मैं सोने का उपक्रम करने लगा, पर सपने देखता रहा। कुछ ही घंटों का तो परिचय था। मुझे लगा कि क्यों न यहीं बस जाया जाय। ये काकेशस की खूबसूरत पहाड़ियाँ कितनी अच्छी हैं। थोड़ी दूर पर कास्पियन सागर तथा इधर थोड़ी दूर पर ब्लैक-सी (काला सागर), कितना मनोहारी प्रदेश है यह!

रात भर बाहर बरफ पड़ती रही। सुबह हुई। बाहर लोगों के पैरों से या स्लेज गाड़ियों (बिना चक्र का बरफ में चलनेवाला एक विशेष वाहन) से बर्फ चरमरा उठती थी। अपनी लाल टाई बाँध कर वसतांगी को स्कूल जाते हुए मैंने देखा। चीजों की उठा-पटक के कारण कानों में पड़नेवाली खड़-खड़ की आवाज से पता चल रहा था कि कोई रसोई-घर में व्यस्त है। इतने में माँ ने ल्योपा को उठ जाने के लिए पुकारा। मैंने प्रातःकाल का पहला शब्द सुना: "ल्योपा।" और मैं हड़बड़ाकर उठा। बहुत देर हो गयी थी। सवेरा चढ़ आया था: "देखो, अतिथि उठ गए हैं क्या? उन्हें हाथ मुँह धोने के लिए गरम पानी दो। नाश्ता तैयार है।" माँ ने आदेश दिया।

ल्योपा गरम पानी लेकर आयी। हमने हाथ-मुँह धोया और सबने साथ मिलकर नाश्ता किया। नाश्ते की टेबल पर दस बज गए। मैंने अचानक घड़ी देखी। कहा: "बहुत देर हो गयी ल्योपा। हमें चलने की तैयारी करनी चाहिए।"

"अतिथि कितनी दूर से आये हैं। एक दिन तो और यहाँ रहिए।" ल्योपा की माँ ने कहा। पर हमारा रुकना सम्भव नहीं था। भले ही मुझे लगा कि मन की मंजिल तो यहीं हैं, पर पगों की मंजिल दूर थी। मैंने कहा: "पता नहीं ल्योपा, हम कभी फिर मिल भी पाएंगे या नहीं?" हम चल पड़े। कदम बढ़ते रहे। पर मुझे लगता था मानो मेरा कुछ पीछे छूट गया है। जब हम चले तो मैंने देखा कि ल्योपा की

रक्तिम आँखों ने धीरे-धीरे बरसना शुरू कर दिया था। वह 'दास्वी दानियाँ (विदाई का रूसी शब्द) कहकर दूसरे कमरे में चली गयी। उसे भय था कि कहीं किसी ने उसके आँसू देख न लिए हों। चलते-चलते मेरी नज़र उस झरोखे पर भी पड़ी, जिसमें से पिछली शाम ल्योषा की आँखें देखी थीं। ल्योषा की याद की यह भेंट जाने कब तक मेरे साथ-साथ चलती रही....!

कुमारी आईरापेत्यान ऑरजेता

●

आरमेनिया की ऊँची-नीची पहाड़ियों के आरोह-अवरोहों पर बसा हुआ नगर दिलीजान। युवकों की एक बड़ी सी सभा। हमने उस सभा में कहा: "अब तक युवक-शक्ति के बल पर युद्ध खेले गये, पर अब युवक-शक्ति शांति स्थापना और युद्ध निवारण में लगनी चाहिए। हम दो युवक भारत से निकल पड़े हैं, युद्ध के विरोध में। सोवियत-संघ से भी एक युवक प्रतिनिधि हमारे साथ अमेरिका तक चले, ऐसा हम चाहते हैं। क्या कोई हमारी पैदल यात्रा में साथ चलने के लिए तैयार है?" सारी सभा में चुप्पी छा गयी। शायद ऐसे अचानक प्रश्न की अपेक्षा किसी ने नहीं की थी। इतने में सभा की चुप्पी भंग करते हुए एक युवती ने खड़े होकर कहा: "मैं तैयार हूँ।" उपस्थित युवकों की आखें इस साहसी युवती की ओर घूम गयीं। कटे हुए घुंघराले बाल, छरहरा बदन,

काली-काली नुकीली आँखों वाला मुस्कराता हुआ चेहरा। कौन है यह,
वह अटल खड़ी थी—अपना हाथ ऊँचा किए। वह न तो झिझक रही थी और न परेशान हो रही थी। उसका नाम था आइरापेरयान जोरजेता। अपनी वृद्ध माँ की बीस २० वर्ष की इकलौती पुत्री।

सभा के बाद जोरजेता दो-तीन घण्टे हमारे साथ रही। भोजन भी हमारे साथ ही किया। और दृढ़तापूर्वक हमारे साथ पैदल चलने की इच्छा जाहिर की। हमने कहा, "अच्छा, कल सवेरे मिलना।"

दूसरे दिन सवेरे तैयार होकर वह हमारे पास पहुँच गयी। उसके आत्म-बल पर आश्चर्य हुआ।

"अमेरिका तक पैदल चलोगी? इतना पैदल चल सकोगी?"

"क्यों नही? अवश्य चल सकूँगी?"

"कभी-कभी बीस-पचीस मील तक कोई गाँव नही आएगा।"

"तो क्या हुआ? जितना आप चल सकते हैं, मैं भी चल सकती हूँ।"

"हम साथ मे पैसा नही रखते। कभी खाना नही मिलेगा।"

"यदि चलने से, भूख और परेशानियो से ही डर होता तो मैं आप के पास आती ही क्यों?" जोरजेता ने कहा।

"हमे कोई सरकार कभी जेल मे भी बंद कर सकती है।"

"कोई भी सरकार शांति-वादियो के साथ इस तरह का व्यवहार क्यों करेगी?"

"क्योंकि हम सरकारों की युद्ध-नीति के खिलाफ आंदोलन करते हैं।" हमने कहा।

"कोई बात नही। यदि अच्छा काम करते हुए भी सरकार हमें जेल में बंद करती है तो उसके लिए भी मैं तैयार हूँ। दुनिया मे चलने वाले शांति-आंदोलन मे मैं अपना छोटा-सा हिस्सा देने के लिए आपके साथ आना चाहती हूँ।" जोरजेता ने ऐसे और भी कुछ कहा।

"लेकिन आपकी माँ बूढ़ी हैं। उनको सम्हालने वाला दूसरा कोई नहीं। आपके बाहर जाने से उनको दिक्कत होगी। क्या आपकी विश्व-यात्रा के लिए उनकी आज्ञा है ?"

"जॉरजेता की माँ की आज्ञा तो नहीं है।" जॉरजेता को चुप देखकर उसके एक मित्र ने कहा।

"ऐसी दशा में आपकी माँ क्या सोचेंगी और पीछे उनकी क्या दशा होगी ?" प्रश्नों पर जॉरजेता चुप रही। सचमुच उसके उत्साह के सामने यह बहुत बड़ी कठिनाई थी। वह एक औषधालय में काम करती है, कमाती है, और माँ की पूरी जिम्मेदारी उसी पर है। लेकिन उसकी आत्म-प्रेरणा हमारे साथ चलने के लिए उसे खींच रही थी। प्रेरणा और जिम्मेदारी के बीच संघर्ष था। बहुत सोचने के बाद हमें यह लगा कि जॉरजेता का हमारे साथ न चलना ही ज्यादा उपयुक्त होगा। हमने कहा : "केवल विश्व-पदयात्रा में शामिल होना ही शांति आंदोलन नहीं है। आप और भी अनेक तरह से इसमें मदद कर सकती हैं। फिलहाल आप हमारे साथ चलने की न सोचें।" हमने कुमारी जॉरजेता को समझाया, बुझाया। वह बहुत निराश हुई। उस दिन वह हमारे साथ अगले पड़ाव तक पैदल आयी। हमारे साथ खूब बातचीत हुई। भारत छोड़ने के बाद कुमारी जॉरजेता पहली युवती थी, जिसने इतनी तीव्रता से हमारे साथ चलने की उत्कण्ठा व्यक्त की। आठ मील वह हमारे साथ पैदल चली। उसके बाद हमें यह विश्वास हो गया कि वह हमारे साथ आगे भी चल सकती थी। काश, उसके घर की परिस्थितियों ने साथ दिया होता !

स्पिरिदोनोव

मॉस्को में हम एक महीने रहे। बहुत-से व्यक्तियों के साथ मिले-जुले। सर्वोच्च सोवियत के अध्यक्ष और आणविक निःशस्त्रीकरण के विशेषज्ञ श्री वी० स्पिरिदोनोव के साथ की मुलाकात में काफी गूढ़ विचार-विमर्श का अवसर मिला।

उस दिन मॉस्को के राजपथ श्वेत, शीतल बर्फ से ढके हुए थे। घुटनों से नीचे तक लटकते हुए काले रंग के भारी ओवरकोट, घुटनों तक के ऊँचे बालकी जूते और कानों तक की गरम टोपियाँ पहने हुए मॉस्कोवासी इधर-उधर तेजी के साथ चल रहे थे। भागती हुई कारों के कारण बर्फ के चरमराने की आवाज सुनाई पड़ रही थी। सम्पूर्ण मॉस्को नगर बर्फ में लिपट कर सोया था। विश्व की राजनैतिक हलचलों के इस महत्वपूर्ण केन्द्र में विचित्र शांति छाई हुई थी। एक ऐसी शांति, जो युद्ध की हर योजना पर अट्टहास कर रही थी। प्रकृति के ऐसे शांत मौसम में हम भी मॉस्को के राजपथ पर चलते हुए क्रेमलिन की तरफ बढ़ रहे थे।

क्रेमलिन में सोवियत-संघ की केन्द्रीय सरकार के कार्यालय हैं तथा सर्वोच्च सोवियत परिषद भी है। क्रेमलिन का अर्थ होता है—किला। इस क्रेमलिन के साथ सोवियत-संघ का लम्बा इतिहास जुड़ा हुआ है। इसी क्रेमलिन में सर्वोच्च सोवियत के अध्यक्ष श्री स्पिरिदोनोव से हमारी मुलाकात हुई। हम चाहते थे कि सोवियत-संघ के प्रधान मंत्री श्री ख्रुश्चेव से मिलें, परन्तु वे बहुत व्यस्त थे। उन्होंने हमें अपने हाथों से दस्तखत करके एक चिट्ठी लिखी थी जिसमें लिखा था कि

बातचीत के दौरान सोवियत शांति परिषद के मंत्री श्री उपस्थित थे।

सबसे पहले श्री स्पिरिदोनोव ने हमारी चल रही पैदल यात्रा की कहानी सुनने में दिलचस्पी दिखायी : "दिल्ली से म.. और वाशिंगटन तक पैदल-यात्रा करने की कल्पना बड़ी दिलचस्प है। कैसे यह प्रेरणा मिली ? कैसे यात्रा प्रारम्भ की ? जिन देशों से होकर गुजरे, वहाँ कैसा प्रतिसाद (रेस्पांस) मिला ?" यह लम्बा प्रश्न सबसे पहले उन्होंने रखा।

हमने संक्षेप में अपनी यात्रा की कहानी सुनाई।

"आपने भारत और सोवियत-संघ के अलावा पाकिस्तान, अफगानिस्तान तथा ईरान की पदयात्रा की है। मुझे यह जानने की बहुत उत्सुकता है कि इन तीनों देशों में शांति - आंदोलन की क्या स्थिति है ?"

हमने इस सवाल का उत्तर देते हुए बताया : "इन तीनों देशों में व्यवस्थित और संगठित रूप से शांति-आंदोलन नहीं है। इन देशों में हमारा ऐसी किसी संस्था से सम्पर्क नहीं आया, जो शांति के लिए जन-आन्दोलन संगठित कर सके, जैसाकि भारत में और सोवियत संघ में हो रहा है। परन्तु इन तीनों देशों की आम जनता के साथ हमारा अच्छा सम्पर्क आया। काफी युवकों और विद्यार्थियों से हम मिले। जनता में शांतिवादी आंदोलनों के प्रति एक विशिष्ट समर्थन और सहानुभूति पायी। इन देशों के लोग यह महसूस करते हैं कि आम जनता को युद्ध और अणु शस्त्रों के खिलाफ जबर्दस्त आवाज उठानी चाहिए। अमेरिका द्वारा प्रेरित सैनिक संगठनों में शामिल देशों के अनेक लोग हमें ऐसे मिले जो सैनिक संगठनों को कतई पसन्द नहीं करते।"

श्री स्पिरिदोनोव ने कहा : "शांतिपूर्ण समाज-रचना के लिए और युद्ध-मुक्त भविष्य के लिए यह बड़ा शुभ लक्षण है कि आम जनता

बातचीत के दौरान सोवियत शांति परिषद के मंत्री श्री कोटोव भी उपस्थित थे।

सबसे पहले श्री स्पिरिदोनोव ने हमारी चल रही पैदल विश्व-यात्रा की कहानी सुनने में दिलचस्पी दिखायी: "दिल्ली से मास्को और वाशिंगटन तक पैदल-यात्रा करने की कल्पना बड़ी आकर्षक और दिलचस्प है। कैसे यह प्रेरणा मिली? कैसे यात्रा प्रारम्भ की? जिन देशों से होकर गुजरे, वहाँ कैसा प्रतिसाद (रेस्पांस) मिला?" यह लम्बा प्रश्न सबसे पहले उन्होंने रखा।

हमने संक्षेप में अपनी यात्रा की कहानी सुनाई।

"आपने भारत और सोवियत-संघ के अलावा पाकिस्तान, अफगानिस्तान तथा ईरान की पदयात्रा की है। मुझे यह जानने की बहुत उत्सुकता है कि इन तीनों देशों में शांति - आंदोलन की क्या स्थिति है?"

हमने इस सवाल का उत्तर देते हुए बताया: "इन तीनों देशों में व्यवस्थित और संगठित रूप से शांति-आंदोलन नहीं है। इन देशों में हमारा ऐसी किसी संस्था से सम्पर्क नहीं आया, जो शांति के लिए जन-आन्दोलन संगठित कर सके, जैसाकि भारत में और सोवियत संघ में हो रहा है। परन्तु इन तीनों देशों की आम जनता के साथ हमारा अच्छा सम्पर्क आया। काफी युवकों और विद्यार्थियों से हम मिले। जनता में शांतिवादी आंदोलनों के प्रति एक विशिष्ट समर्थन और सहानुभूति पायी। इन देशों के लोग यह महसूस करते हैं कि आम जनता को युद्ध और अणु शस्त्रों के खिलाफ जबर्दस्त आवाज उठानी चाहिए। अमेरिका द्वारा प्रेरित सैनिक संगठनों में शामिल देशों के अनेक लोग हमें ऐसे मिले जो सैनिक संगठनों को कतई पसन्द नहीं करते।"

श्री स्पिरिदोनोव ने कहा: "शांतिपूर्ण समाज-रचना के लिए और युद्ध-मुक्त भविष्य के लिए यह बड़ा शुभ लक्षण है कि आम जनता

होगा ?" श्री सिरिदोनोव के हाथ, चेहरा, आँखें सब बोल रहे थे। वे बड़ी तल्लीनता से अपनी बात समझा रहे थे।

हमने पूछा: "पश्चिम वाले भी तो कहते हैं कि हम शांति चाहते हैं, पर सोवियत सरकार किसी समझौते तक पहुँचने में बाधक बनती है। इसके लिए आपका क्या कहना है ?"

श्री सिरिदोनोव यह समझ गये कि हमारा समाधान नहीं हुआ है। वे बोले : "आप जानते हैं कि सोवियत समाज एक आदर्श के आधार पर अपना निर्माण कर रहा है। आपके यहाँ गांधी हुए। उन्होंने समाज को एक आदर्श दिया, एक सिद्धांत दिया। उसी तरह मार्क्स और लेनिन ने हमें एक आदर्श दिया। वह आदर्श है—साम्यवादी समाज की रचना। वर्ग-विहीन तथा राज्य-विहीन समाज की स्थापना। हम अभी उस आदर्श की ओर बढ़ ही रहे हैं। अभी हम अपनी मंजिल तक नहीं पहुँचे हैं। मैं यह जाहिर कर देना चाहता हूँ कि वर्ग-विहीन तथा राज्य-विहीन साम्यवादी समाज के आदर्श के साथ सैन्यवाद का कोई मेल नहीं बैठता और न बैठेगा। सैन्यवाद साम्यवाद के खिलाफ है। इसलिए हमारे लिए शांति तथा निःशस्त्रीकरण केवल तात्कालिक नीति का प्रश्न नहीं है, यह तो साम्यवादी समाज-व्यवस्था का अनिवार्य अङ्ग है। परन्तु पश्चिम में राज्य-व्यवस्था के जो आदर्श हैं वे इससे बिल्कुल भिन्न हैं। वहाँ पर लोगों ने राज्य को मानव-समाज के गले में अनन्त काल तक बँधी रहनेवाली शृंखला मान रखा है। इसलिए वे सेना और शस्त्रीकरण की व्यर्थता को कैसे स्वीकार कर पायेंगे ? हथियारों का निर्माण करना और फिर उन्हें खपाने के लिए दुनिया भर में बाजार खड़ा करना तथा इस तरह हथियारों का एक व्यापक व्यापार चलाये रखना, जब तक बन्द नहीं होगा तब तक इस व्यापार के पीछे मुनाफाखोरी और निहित स्वार्थ चलते रहेंगे। यही निःशस्त्रीकरण की दिशा में सबसे बड़ी अटक है।"

श्री त्सिरिदोनोव की बातें सुनकर मुझे तो ऐसा लग रहा था जैसे कोई गांधीवादी ही बोल रहा हो। उनके भाव बड़ी हार्दिकता और सहजता के साथ प्रकट हो रहे थे।

श्री त्सिरिदोनोव के साथ मुलाकात करने के बाद हम क्रेमलिन के उस हिस्से में गए जहाँ लेनिन का निवास था। हमने उनके रहने, सोने, खाने की जगह देखी। यह स्थान भी हमारे लिए बड़ा प्रभावोत्पादक था। क्रेमलिन के अन्य भागों का भी हमने निरीक्षण किया। फिर लाल प्रांगण (रेड स्क्वायर) को पार करके हम वापस 'होटल बुडापेस्ट' में आ गए। हम जब तक मॉस्को में रहे, तब तक इसी होटल में रहे थे।

कुमारी वसील्योवा ल्युदमीला

मॉस्को में हमने एक महीना बिताया। दुनिया की राजनीति का यह बड़ा केंद्र सांस्कृतिक, साहित्यिक और शैक्षणिक दृष्टि से भी अपना विशिष्ट स्थान रखता है। मॉस्को का हमारे मन में जो आकर्षण था, वह और भी अधिक बढ़ गया, जब हमें वहाँ पर वसील्योवा ल्युदमीला जैसी अच्छी मित्र मिल गयीं। थोड़े-से परिचय में ही हम इतने घुल-मिल गए कि मैं बराबर 'मीला' कहकर ही पुकारा करता था।

गलती हुई, पर मीला से गलती नहीं हुई। उसकी हिंदी शुद्ध और अच्छी थी।

बातचीत के दौरान मीला ने कहा : "यहाँ हम लोग फ्रेंच, जर्मन, अंग्रेजी, हिंदी, जापानी आदि अनेक विदेशी भाषाएँ सीखते हैं। आप लोगों ने तो अपने यहाँ केवल अंग्रेजी को खिड़की बना रखी है बाकी चारों तरफ से घर बंद है। विज्ञान, राजनीति, साहित्य सभी चीजें आप लोग अंग्रेजी की खिड़की में से ही प्राप्त करते हैं। पर हम चारों तरफ की खिड़कियाँ खोलकर रहते हैं।" मीला के इस व्यंग पर मुझे शर्मिन्दा होना पड़ा और यह कहना पड़ा कि अंग्रेजी को हमने जरूरत से ज्यादा प्रश्रय देकर गलती की है।

मॉस्को में हम महीने भर रहे और मीला से बार-बार मिलते रहे। कभी-कभी तो उसके यहाँ रात के १ या २ तक बज जाते थे।

श्री वितालीविच कातारव्

●

मॉस्को के बाद फिर पदयात्रा शुरु हुई। रूस के गाँवों में एक महीने की पैदल यात्रा करके हम १५ अप्रैल '६३ को मिस्क पहुँचे। मिस्क श्वेत रशिया गणराज्य की राजधानी है। यहाँ पर दूसरे महायुद्ध के अनेक अवशेष अभी भी दिखाई पड़ते हैं। युद्ध-कवलित मिस्क सन् १९४४ में तो एक खण्डहर जैसा प्रतीत होता था, परन्तु अब वहाँ के लोगों ने नए ढंग से निर्माण कर लिया है।

और अपने जीवन का पूरा कार्यक्रम चलाते हैं। भवन के अंदर जाने से ऐसा लगता है मानो हम किसी दूसरे नगर में आ गये हैं।

हम विश्वविद्यालय की दसवीं मंजिल पर छात्राओं के होस्टल में गये और मीला के कमरे में घुसे तो मैं यह देखकर बहुत खुश हुआ कि मीला ने न केवल हिंदी का ही अभ्यास किया है, बल्कि उसने पूरे भारत को अपने कमरे में बसा रखा है। एक ओर उसके कमरे में भारतीय किताबों से आलमारी भरी थी तो दूसरी ओर भारत का नक्शा टँगा हुआ था। इसके अलावा उसके कमरे में अनेक चित्र भी थे। कोई चित्र केरल का तो कोई कश्मीर का। एक चित्र अगर मीनाक्षी मंदिर का था तो दूसरा ताजमहल का। इस तरह से पूरे भारत का वातावरण कमरे में छाया हुआ था। मीला ने हमारे लिए हिन्दुस्तानी ढंग की खिचड़ी भी पकायी। होस्टल में रहनेवाले प्रत्येक विद्यार्थी को एक कमरे के साथ ही लगा हुआ स्नान-घर तथा शौचालय भी अलग मिलता है। इसके अलावा विद्यार्थियों को अगर स्वयं अपना भोजन पकाना हो तो उसके लिए भोजनालय की भी व्यवस्था है। सभी विद्यार्थी बड़ी सुविधा के साथ रहते हैं। मीला ने बताया कि उसके रहने, खाने, पीने, पढ़ने आदि की पूरी व्यवस्था राज्य की तरफ से ही होती है। उसे अपने माता-पिता पर बिलकुल निर्भर नहीं रहना पड़ता।

विश्वविद्यालय के छात्रों की संस्था की ओर से विद्यार्थियों में हमारे भाषण का भी कार्यक्रम रखा गया था। मीला हमारे भाषण का रूसी में अनुवाद कर रही थी। मैंने भाषण देते-देते एक जगह कहा : "रूस के लोग 'हमारा' मदद कर रहे हैं।" मीला ने अनुवाद को बीच में ही रोकते हुए मुझे टोककर कहा : "हमारा मदद या 'हमारी' मदद ?" मीला का शुद्ध हिंदी-ज्ञान देखकर तो मुझे बहुत ही आश्चर्य हुआ। मैं हिंदी भाषी, हिन्दी का लेखक बनता हूँ। मुझसे

गलती हुई, पर मीना से गलती नहीं हुई। उसकी हिंदी कितनी शुद्ध और अच्छी थी।

बातचीत के दौरान मीना ने कहा : "यहाँ हम लोग फ्रेंच, जर्मन, अंग्रेजी, हिंदी, जापानी आदि अनेक विदेशी भाषाएँ सीखते हैं। आप लोगों ने तो अपने यहाँ केवल अंग्रेजी की खिड़की बना रखी है बाकी चारों तरफ से घर बंद है। विज्ञान, राजनीति, साहित्य सभी चीजें आप लोग अंग्रेजी की खिड़की में से ही प्राप्त करते हैं। पर हम चारों तरफ की खिड़कियाँ खोलकर रहते हैं।" मीना के इस व्यंग पर मुझे शर्मिन्दा होना पड़ा और यह कहना पड़ा कि अंग्रेजी को हमने जरूरत से ज्यादा प्रश्रय देकर गलती की है।

मॉस्को में हम महीने भर रहे और मीना से बार-बार मिलते रहे। कभी-कभी तो उसके यहाँ रात के १ या २ तक बज जाते थे।

श्री वितालीविच कालारव्

●

मॉस्को के बाद फिर पदयात्रा शुरु हुई। रूस के गाँवों में एक महीने की पैदल यात्रा करके हम १५ अप्रैल '६३ को मिस्क पहुँचे। मिस्क श्वेत रशिया गणराज्य की राजधानी है। यहाँ पर दूसरे महायुद्ध के अनेक अवशेष अभी भी दिखाई पड़ते हैं। युद्ध-कवलित मिस्क सन् १९४४ में तो एक खण्डहर जैसा प्रतीत होता था, परन्तु अब वहाँ के लोगों ने नए ढंग से निर्माण कर लिया है।

मिस्क शहर की सबसे 'सड़क सुन्दर प्रास्पेक्ट लेनिन' है। सुन्दर भवनों को अपने दोनों किनारों पर अवस्थित किए हुए ८ किलोमीटर लम्बे इस राजपथ की शोभा देखते ही बनती है। नेमिगा नदी के किनारे पर बसे हुए इस नगर का सौंदर्य देखते हुए हम सोवियत मैत्री परिषद के मेहमान बनकर 'होटल मिस्क' तक पहुँचे। वहाँ हम ऊपर की मंजिल पर जा ही रहे थे कि एक व्यक्ति सीढ़ियों से उतरता हुआ मिला। सुन्दर चेहरा और आकर्षक व्यक्तित्व देखकर मेरी आँखें उस व्यक्ति से टकरा गयीं। उलझे हुए बाल, गले में आधी खुली हुई टाई, कोट के खुले बटन, मुँह में सिगार; यह देखकर लगा कि शायद कोई कलाकार होगा। पर मैं कुछ बोला नहीं। आगे बढ़ने लगा। यह महाशय भी थोड़ा नीचे उतरे। पर उनके मन में भी हमारे बारे में कुछ जिज्ञासा पैदा हुई इसलिए उन्होंने पीछे मुड़कर पूछा: "हिन्दीस्की ?" मैंने रूसी में उत्तर दिया : "हाँ, हम भारतीय हैं।" फिर उन्होंने हमसे और भी परिचय बढ़ाया। पाँच मिनट की इस मुलाकात के बाद हम अपने कमरे में चले गए और ये महाशय अपने कमरे में। दोपहर के बाद अचानक हमारे कमरे में टेलीफोन की घण्टी बजी। हमसे कहा गया : "सीढ़ियों में आपने जिस व्यक्ति से मुलाकात की थी, वही बोल रहा है। वह आप को चाय के लिए अपने कमरे में आमंत्रित करना चाहता है। क्या आप को यह स्वीकार्य होगा ?" मैंने तुरन्त ही उनके आमंत्रण को स्वीकार कर लिया। जब से देखा था तभी से उनके व्यक्तित्व के प्रति एक विशेष आकर्षण पैदा हो गया था, इसलिए मुझे यह अच्छा लगा कि हम कुछ देर उनके साथ और रहें।

चाय के साथ-साथ गपशप चलने लगी। कुछ इधर की, कुछ उधर की। कोई व्यवस्थित विषय नहीं। ये महाशय गाँधीजी के बहुत प्रशंसक थे। बोले : "गाँधीजी ने फासिस्टवाद का बहुत विरोध किया था, यह एक आश्चर्यजनक बात थी कि उनके जैसे आदमी ने जो अहिंसा

पर पूरी तरह विश्वास करनेवाले ये फासिस्टवाद को खत्म करवाने के लिए युद्ध का भी समर्थन किया। उन्हें लगा कि अगर फासिस्टवाद ने दुनिया पर अपना फौलादी पंजा फैला दिया तो वह बहुत भयकर हालत होगी। हम रूसी लोगो ने भी उस समय यही महसूस किया था।" इतने सारे प्रसंगों के बावजूद मुझे श्री काताएव् का पूरा परिचय नहीं मिला था। उन्होने कहा : "मैं एक संगीत प्रेमी हूँ। वाद्य-संगीत में मेरी रुचि है।" फिर उन्होंने हमसे कहा : "क्या आप को भी वाद्य-संगीत सुनने की रुचि है ?"

मैंने कहा: "वैसे तो हमारा संगीत से ज्यादा वास्ता नहीं है क्योंकि हम स्वयं न गाना जानते हैं और न बजाना, परन्तु आप लोगों का वाद्य-संगीत कैसा होता है, यह देखने और सुनने मे ... अवश्य है।"

श्री काताएव् बोले : "आज शाम को मिंस्क के कॉन्सर्ट हाल में अपना कॉन्सर्ट प्रस्तुत करनेवाला हूँ। आप को मेरी तरफ से वहाँ आने का निमत्रण है।"

हमने खुशी के साथ उनका निमत्रण स्वीकार किया।

हम सायंकाल मिंस्क के सुप्रसिद्ध और कलापूर्ण कॉन्सर्ट हाल में पहुँचे। बालकनी मे हमारे लिए बैठने का विशेष रूप से प्रबंध किया गया था, इसलिए हमे किसी तरह की दिक्कत होने का तो सवाल ही नही था। अभी तक भी मुझे यह अंदाजा नही था कि काताएव् ही इस कॉन्सर्ट पार्टी के मास्टर या संचालक हैं। पर जब मैंने देखा कि वे एक विशिष्ट वेषभूषा पहनकर, हाथ मे छडी लेकर स्टेज पर पहुँचे तो हाल मे भरी हुई जनता एकदम उनके स्वागत मे खड़ी हो गयी। लम्बे समय तक तालियाँ बजाकर तथा हर्ष-ध्वनि के द्वारा उनका स्वागत किया गया। लोग जब बैठ गए तब श्री काताएव् ने अपना कार्यक्रम पेश किया। इतना व्यवस्थित, इतना सधा हुआ और इतना रोचक कि

मुझ जैसा संगीत से अनभिज्ञ व्यक्ति भी उनके कार्यक्रम को तल्लीनता के साथ सुन रहा था। उन्होंने लगभग एक-डेढ़ घण्टे तक अपना कार्यक्रम प्रस्तुत किया।

मेरे बगल में बैठी हुई दुभाषिया बहन ने उनका पूरा परिचय दिया। वह बोली : "श्री काताएवू हमारे देश के माने हुए कॉन्सर्ट-मास्टर हैं। उनकी कला इस देश में अपना बेजोड़ स्थान रखती है। इतना महान कलाकार, लेकिन कितना नम्र, कितना सरल और कितना सहज !"

दो दिन मिस्क में हम कलाकार के साथ रहे। उनसे विचार-विनिमय किया। उनके संगीत का माहौल मेरे मन में सदा के लिए बस-सा गया है। वे जिस समय हाथ में छड़ी लेकर अपने दो हाथों को, चेहरे को और शरीर के अन्य अंगों को नचाते थे उस समय लगता था कि सारा वातावरण संगीतमय बन उठा है। ऑरकेस्ट्रा (संगीत-दल) में उनके प्राय: ५० लोग थे, जो स्टेज के नीचे तथा उनके ठीक सामने बैठे थे। प्रत्येक के पास अपना-अपना वाद्य-यंत्र था। पश्चिम के कॉन्सर्ट का ढंग हमारे यहां के संगीत-सम्मेलनों से बहुत भिन्न होता है। वहां पर प्रत्येक वादक अपने वाद्य के साथ संगीत की शास्त्रीय भाषा में लिखे हुए स्वरों को सामने रखता है। इसलिए सब लोग तालमेल के साथ ऐसा स्वर प्रस्फुटित करते हैं कि जिसमें किसी भी श्रोता का खो-जाना अत्यन्त स्वाभाविक है।

सबसे बड़ी बात तो मास्टर के रंग-ढंग की है। वे जिस तरह से अपने वादक साथियों को गाइड करते हैं उसी पर कान्सर्ट का दारोमदार होता है। अगर मास्टर पल भर के लिए भी गड़बड़ा जाय तो सारे कोन्सर्ट का मजा किरकिरा हो जाता है। इसीलिए कॉन्सर्ट मास्टर का इतना अधिक महत्व है। उसके इशारों पर सारे वादकगण खेलते हैं। वे लोग इतने प्रशिक्षित होते हैं कि एक छोटे से छोटे हाव-भाव

को तथा बारीक से बारीक इंगित को आसानी से समझ लेते हैं। इसीलिए इधर कॉन्सर्ट का कार्यक्रम चल रहा होता है, उधर श्रोतागण थिरक-थिरक कर झूमने लगते हैं। सोवियत-संघ में इस तरह के कॉन्सर्ट-हाल काफी लोकप्रिय हैं और वे श्रोताओं से भरे रहते हैं। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि वहाँ के लोग कितने संगीत-प्रेमी होते हैं। हमारे यहाँ तो इस तरह से संगीत का कोई नियमित कार्यक्रम कम ही स्थानों पर चलता होगा। जबकि वहा अनेक शहरों मे केवल कान्सर्ट चलाने के लिए विशेष हाल बने हुए हैं और प्रतिदिन वहाँ पर कार्यक्रम होते हैं।

आम तौर से रूसी लोग पियानो के बड़े शौकीन होते हैं। अपनी यात्रा में, हम जहाँ-जहाँ ठहरे, वहाँ लोगों के घरो मे पियानो अक्सर दिखाई दिया। जब हम टालस्टाय के फार्म पर गए, तब उनके घर के संग्रहालय में तो एक से अधिक पियानो देखे। लगता है कि सोवियत-लोग प्राचीन काल से पियानो के प्रेमी हैं। इसीलिए मिंस्क का यह कॉन्सर्ट हाल भी संगीत-प्रेमियों की भीड़ से खचाखच भरा था और श्री काताएव् के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट कर रहा था।

जाइए कि पूर्व से और खास कर समाजवादी देशों से युद्ध प्रारम्भ नहीं होगा। उन्हें सह-अस्तित्व की हमारी नीति पर विश्वास करना चाहिए। शांति की दिशा में मिल-जुल कर कदम बढ़ाना चाहिए।"

प्रभाकर ने पूछा : "इसके अलावा भी क्या कोई और संदेश आप हमारे माध्यम से पश्चिमी देशों को देना चाहते हैं ?"

प्रोफेसर कुलचिस्की मुस्कराए। फिर सोचते हुए बोले : 'हाँ, एक और संदेश है जो बहुत ही महत्वपूर्ण है। अणुशस्त्रों का विस्तार रोकने के लक्ष्य से हमारी सरकार के विदेश मंत्री श्री रापात्स्की ने मध्य यूरोप को अणुमुक्त क्षेत्र बनाने की तजबीज पेश की है। मुझे उम्मीद थी कि पश्चिमी देश इस योजना का स्वागत करेंगे, परन्तु जर्मनी की अणुशस्त्र प्राप्त करने की ख्वाहिश ने इस योजना के महत्व को समझने देने में बाधा पहुँचाई है। जब आप पश्चिमी जर्मनी जायें तो लोगों से रापात्स्की योजना के बारे में भी चर्चा करें।"

हमारी सारी बातचीत शांति के प्रश्न पर ही उलझी हुई थी। मैंने प्रसंग बदलते हुए पूछा : "आप अपने नाम के पहले 'प्रोफेसर' शब्द का इस्तेमाल करना क्यों पसंद करते हैं ?"

यह बड़ा अजीबोगरीब सवाल था। इस पर एक जोर का ठहाका सारे कमरे में छा गया। फिर प्रोफेसरसाहब ने उत्तर देते हुए कहा : "प्रोफेसर होना यानी शिक्षा के क्षेत्र से सम्बन्धित होना एक गौरव की बात होती है। मैं ऐसा मानता हूँ कि जीवन में शिक्षा का सबसे ज्यादा महत्व है। मुझे याद आता है कि आपके देश में महात्मागांधी और रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी शिक्षा को बहुत ऊँचा दर्जा दिया था। अंग्रेजों ने भारत में अपनी नौकरशाही चलाने के लिए जो शिक्षा-पद्धति लागू की थी उसने भारत को बहुत नुकसान पहुँचाया और इसीलिए गांधी तथा टैगोर ने शिक्षा में क्रांति लाने की इच्छा जाहिर की। उनकी इस इच्छा से मालूम होता है कि वे लोग शिक्षा को कितना महत्व देते थे।

अगर हम समाज में नए मूल्यों की स्थापना करना चाहते हैं तो सबसे पहले शिक्षा के क्षेत्र की तरफ ध्यान देना पड़ेगा। अगर समाजवाद तथा जनतंत्र की नींव को मजबूत बनाना है तो उसका प्रारम्भ शिक्षा के क्षेत्र से करना पड़ेगा। मैं अपने नाम के साथ 'प्रोफेसर' शब्द जोड़ता हूँ इससे आपको यह अन्दाजा होगा कि मैं अपने आपको शिक्षा के क्षेत्र के साथ जोड़ने में दिलचस्पी रखता हूँ।"

प्रोफेसर साहब का यह विश्लेषण सचमुच अनोखा था। बातचीत करते हुए उनका लहजा एक राजनेता से अधिक एक शांतिवादी और शिक्षाशास्त्री का ही था। उन्होंने बातचीत के अन्त में एक और भी महत्वपूर्ण बात बतायी : "बिना समाजवाद के जनतन्त्र कायम नहीं रखा जा सकता और बिना जनतन्त्र के समाजवाद अधूरा है, अतः जनतन्त्र और समाजवाद को मैं एक ही सिक्के के दो पहलू मानता हूँ। समाजवादी-व्यवस्था में ही जनतन्त्र सफल हो सकता है। पोलैण्ड इस बात का प्रमाण है। हमारे यहाँ एक से अधिक दल हैं और सभी दलों के विचारों में जो मतभेद हैं उनका हम आदर करते हैं। परन्तु देश का हित इन सभी मतभेदों से अधिक बड़ा है, यह भी हम सब मानते हैं। अलग-अलग राजनैतिक दलों के लोग सत्ता हथियाने के लिए आपस में लड़ते रहें और देश का हित उपेक्षित होता रहे, यह जनतन्त्र के नाम पर सत्ता की होड़ के सिवाय कुछ नहीं है। मैं एक ऐसे समाज की कल्पना करता हूँ जहाँ समाजवाद और जनतन्त्र साथ-साथ पनपेंगे तथा मानवता का कल्याण करेंगे।"

हमारी इस बातचीत में लगभग एक घंटा बीत चुका था। मैंने कुछ और भी प्रश्न पूछने का विचार किया था, परन्तु हमारी चर्चा इतनी लम्बी हो गई कि मैंने अपना विचार स्थगित कर दिया। पोलैण्ड की यात्रा में प्रो० कुलचिस्की के साथ की यह मुलाकात एक उल्लेखनीय-यादगार बनकर मेरे मन में समागई है। मुझे ऐसा लगता है कि उनसे

कुमारी रोजमरी हमें पोलैण्ड के महान् संगीताचार्य श्री शॉपें के ज़न्मस्थान पर भी ले गयी। यह स्थान वारसा से लगभग सौ मील पश्चिम की तरफ है। शॉपें ने संगीत कला को एक नया मोड़ दिया था और उन्होंने संगीत के क्षेत्र में जो नयी शैलियाँ और विधाएँ प्रचलित कीं उनकी आज भी कोई तुलना नहीं की जा सकती। शॉपें का घर आज पोलैण्ड का एक बहुत बड़ा तीर्थ माना जाता है, जहाँ हजारों लोग पहुँचकर संगीत के इस महान् साधक के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। समय-समय पर इस स्थान में शॉपें की संगीत-विधि का प्रत्यक्ष आयोजन भी चलता है। हम लोग जिस दिन गये थे उस दिन भी कुछ विशिष्ट संगीत-कार्यक्रम का आयोजन किया गया था। हमारे साथ ही युगोस्लाविया के १०० विद्यार्थी भी इस स्थान को देखने के लिए आये हुए थे।

पोलैण्ड की आर्थिक व्यवस्था का परिचय देते हुए रोजमरी ने हमें बताया : "हमारा देश एक समाजवादी देश है। कम्युनिज्म हमारा आदर्श है। इस दिशा में समाज का परिवर्तन करने के लिए हमने पूरी तरह से जनतंत्र का मार्ग अपनाया है। जमीन पर अभी तक यहाँ व्यक्तिगत खेती ही होती है, क्योंकि सामूहिक खेती के विचार को जनता ने स्वीकार नहीं किया है। पर एक आदमी अधिक-से-अधिक ५० हेक्टर भूमि ही रख सकता है, हालाँकि साधारणतया लोगों के पास १५ से ३० हेक्टर के बीच जमीन है। दूकानें, मकान और कारखाने भी व्यक्तिगत हो सकते हैं। व्यक्तिगत कारखानों में ५० व्यक्तियों से अधिक कामगार नहीं रखे जा सकते, ताकि व्यक्तिगत उद्योग शोषण अथवा प्रचुर अर्थ-संग्रह का साधन न बन जाये। यदि ५० व्यक्तियों से अधिक कामगार किसी दुकान, होटल, कारखाने या कम्पनी में हैं, तो उसे सहयोगी-समिति के अन्तर्गत लाना होगा अथवा उसे सरकार स्वयं चलायेगी। हमारे यहाँ काफी बड़े-बड़े सहयोगी

संस्थान हैं। उनमें सरकार का किसी भी तरह सीधा हस्तक्षेप नहीं है। व्यक्ति को उन्मुक्त रूप से और स्वतंत्रतापूर्वक काम करने का अवसर है बशर्ते कि वह समाज पर हावी होने, स्वार्थ साधने या शोषण करने का प्रयत्न न करे।"

कुमारी रोजमरी ने हमें अपनी चित्रकार सहेली श्रीमती सोसान्ना के घर ले जाकर एक और सुअवसर प्रदान किया। श्रीमती सोसान्ना के घर पर बिताए हुए चार घण्टे हमारे मन पर एक मधुर स्मृति अंकित कर गये। उन्होने हमें स्वादिष्ट शाकाहारी भोजन ही नहीं कराया, बल्कि उसी समय हमारा एक बड़ा-सा पोर्ट्रेट बनाकर हमें सदा के लिए अंकित भी कर लिया। श्रीमती सोसान्ना बोली : "आप आये और चले जायेंगे, पर आप लोगों का यह पोर्ट्रेट मुझसे शांतियात्रा की कहानी कहता रहेगा। मैं कला की उपासिका हूँ। आप जानते हैं कि कलाकार करुणा और कोमलता की भावनाओं मे पलता है। वह सृष्टि का और सुन्दरता का पुजारी होता है। मैं आप लोगो के आगमन पर इतनी प्रसन्न हूँ कि इसका बयान नहीं कर सकती।"

हमने यह देखा कि पोलैण्ड के लोग बड़े कला-प्रेमी होते हैं। पोलैण्ड मे आधुनिक कला के विकास के लिए भी पर्याप्त रूप से ध्यान दिया गया है और लोगों की उस तरफ काफी रुचि है। हम जिस 'दोम च्होपा' होटल में ठहरे थे उसमें भी भित्तियों पर आधुनिक कला के बड़े सुन्दर नमूने देखने को मिले। सोसान्ना के यहाँ भी हमे बताया गया कि पोलैण्ड के लोग नये-नये प्रयोग करने में बड़ी दिलचस्पी रखते हैं। जो पोर्ट्रेट उसने बनाया था उसमें भी आधुनिकता का पर्याप्त पुट था। उन्होंने तैल रंगों का इस्तेमाल किया था और हम दोनों मित्रो को एक ही कैनवास पर उतार लिया था। वह पोर्ट्रेट देखकर हम भी बड़े प्रभावित हुए। कुमारी रोजमरी बोली : "यह पोर्ट्रेट तो बड़ी जल्दी में बनाया गया है। वरना कुछ दिन पहले सोसान्ना ने अपने चित्रों

पर पूरा भरोसा था। रेनाता स्वयं अपना हित-अहित सोचेगी, ऐसा उनका विश्वास था।

भारत में तो यदि किसी अकेली लड़की या तरुणी की तरफ नजर उठायी या लड़की ने अपने किसी सहपाठी के साथ अकेले में कुछ घण्टे भी विताये तो घर में कुहराम मच जायेगा। जिन्दगी-भर की दोस्ती हो, पर यदि किसी युवक के साथ थोड़ा-सा स्नेहपूर्ण संबंध दीखा कि वे ही दोस्त चरित्र पर लांछन लगाने लगेंगे। माता को अपनी बेटी पर विश्वास नहीं। भाई को बहन पर विश्वास नहीं। पति को पत्नी पर भरोसा नहीं। इस तरह मात्र अविश्वास पर आधारित चरित्र और नैतिकता की बुनियाद आखिर कितनी मजबूती होगी।

कुमारी रेनाता हमें ऑपेरा हाउस लेकर गयी। वहाँ एक खास तरह का 'वैले' चल रहा था। हाल दर्शकों से ठसाठस भरा था। कलाकारों ने दर्शकों को अपने अभिनय से मुग्ध कर दिया। जिस प्रकार भारत में भरत-नाट्यम्, मणिपुरी, कत्थक आदि नृत्य चलते हैं उसी प्रकार इन देशों में ये वैले-नृत्य बहुत लोकप्रिय हैं। सोवियत संघ तो इन नृत्यों में बहुत ही आगे है। वैले अभिनय करनेवाली नर्तकियाँ अपने शरीर के अंग-अंग को इस तरह से थिरकाती हैं कि लगता है मानो वे रवर की पुतलियाँ हों। ऑपेरा समाप्त होने के बाद हमने कलाकारों से मुलाकात भी की। अपनी यात्रा के दौरान इस तरह से थिएटर में जाने के अवसर हमें अक्सर मिलते रहते थे। पश्चिम के मेजवान लोग अपना यह कर्तव्य समझते हैं कि जब उनके यहाँ कोई मेहमान आकर ठहरा हो तो उसके मनोविनोद के लिए ऐसे मनोरंजन के स्थानों में ले जाया जाये।

आखिर हम पोजनान से विदा हुए। कुमारी रेनाता और भारत पोलैण्ड मित्रता संघ के अध्यक्ष श्री हॉफमेन दो तीन मील पैदल

चलकर शहर की सीमा तक हमें पहुँचाने आये। स्नेह भरे शब्दों में अपने दोनों मित्रों से विदा माँगी और कुमारी रेनाता तथा उसके माता-पिता को उनके हार्दिक आतिथ्य के लिए धन्यवाद दिया।

ज्यों ही हम आगे बढ़ने को हुए कि श्री हॉफमेन ने कहा : "यों सूखी विदा कैसे हो सकती है ? आपको रेनाता का चुम्बन लेना होगा तब विदा होगी। हमारे यहाँ की विदाई का यही रिवाज है। हार्दिक धन्यवाद प्रकट करने का यही सर्वोत्तम तरीका है। अगर ऐसा नहीं करेंगे तो माना जायेगा कि आप उनके आतिथ्य से पूरी तरह प्रसन्न नहीं हुए।" मुझे काटो तो खून नहीं। मेरे सामने २१ वर्ष की वह सुन्दर युवती रेनाता खड़ी थी और एक वृद्ध महाशय उसका चुम्बन लेने के लिए मुझे आदेश दे रहे थे। यों सड़क पर खड़े होकर मैं उसका चुम्बन लूँ ? संस्कारों के सर्वथा विपरीत बात थी। लेकिन श्री हॉफमेन की बात का उत्तर भी क्या हो सकता है ? रेनाता को चुम्बन न देने का अर्थ है उसका अपमान ! तर्क और समाधान का समय कहाँ ? डरते-डरते धीरे से रेनाता का चुम्बन लिया। मेरे इस डर को रेनाता समझ गयी और उसने यह कहते हुए कि "अच्छे हिन्दुस्तानी हो कि चुम्बन तक का तरीका नहीं जानते।" उसने बाँहों में भरकर एक जोर का चुम्बन लिया। यह मित्रता और कृतज्ञता का चुम्बन था। पर मेरे लिए तो यह कुछ विचित्र-सी सिहरन थी। मैं जिन संस्कारों में पला हूँ उनमें चुम्बन पाप है, पर मैंने महसूस किया कि सचमुच आत्मीय व्यवहार में पाप जैसा कुछ नहीं होता।

पिकाएँ और विद्यार्थीगण बहुत ही शर्मिन्दा हो रहे थे। प्रधानाध्यापक जब वापस अपने कमरे में चले गये, तब एक अध्यापिका आयी और कहने लगी : "मुझे बहुत दुःख है कि आप के साथ हमारे विद्यालय में ऐसा व्यवहार हुआ। खास तौर से आप जैसे विदेशी अतिथियों के साथ ऐसी घटना का होना अत्यन्त अपमानजनक है। आशा है आप हमारी मजबूरी समझेंगे और क्षमा करेंगे।"

मैंने कहा : "हमें किसी बात का दुःख नहीं है। आप चिन्ता न करें। यह वृत्तान्त कई छात्रों ने देखा-सुना। पाँचवीं कक्षा के एक विद्यार्थी से यह देखा नहीं गया। गले में किताबों का झोला, हाथ में फाउन्टेनपेन और दावात तथा काले हाफ-पैण्ट पर सफेद कमीज एवं गले में लाल टाई बाँधे हुए यह बालक धीरे से बाहर निकला और हमारे पास आकर बोला : "क्या आप लोग मेरे घर चलेंगे ? बड़ा भोला-सा प्रश्न था। उसने बड़े साहस और आत्मविश्वास के साथ यह सवाल पूछा था। "कहाँ है तुम्हारा घर ?" मैंने पूछा।

"यहाँ से आधा मील पूर्व दिशा में।" बालक ने कहा।

"पर हम तो पूर्व से आ रहे हैं और पश्चिम की तरफ जा रहे हैं, इसलिए तुम्हारी तरफ जाना चक्करवाला होगा।" प्रभाकर ने कहा।

"आप तो देश-दुनिया की पदयात्रा करते हैं। एक मील का चक्कर ही सही।" बालक ने बड़े-बूढ़े की तरह गम्भीर होकर उत्तर दिया।

"पर मित्र, तुम कौन हो ? क्यों हमें घर ले जाना चाहते हो ?"

"मैं कौन हूँ। आप यह कैसे समझेंगे।" बालक हमारी बुद्धि पर और हमारे तर्कों पर विजय पाता जा रहा था।

"पर आपको मैं अपना अतिथि बनाना चाहता हूँ। मेरी माँ आपको अपने घर पाकर बहुत खुश होगी। आप वहाँ विश्राम करें। कुछ नाश्ता करें। मुझे बहुत दुःख है कि मेरे विद्यालय में आपके साथ

ऐसा व्यवहार हुआ।" बालक रूसी भाषा में समझा रहा था। बालक की यह मीठी बातें हमारे मन को प्रभावित करती जा रही थी।

"अच्छा, चलो सतीश, इनके घर चलेंगे।" प्रभाकर ने कहा।

हम चल पड़े। बालक ने अपने घर की कहानी बतायी। भाई-बहन, पिता-माँ सबके बारे में जानकारी दी। फिर वह हमारी यात्रा के बारे में पूछने लगा। उसने अपने झोले में से एक किताब निकाली और पन्ने पलटते हुए ताजमहल का चित्र निकाला। हमसे पूछा : "क्या आप उसी हिन्दुस्तान से आ रहे हैं, जहाँ यह ताजमहल है?"

मैंने कहा : "हाँ, हम उसी हिन्दुस्तान से आ रहे हैं। हमने कई बार ताजमहल देखा है।

बालक का चेहरा उतर गया। वह बोला : "मैं ताजमहल देखने के लिए भारत आना चाहता था, परन्तु लगता है अब मुझे अपना विचार बदलना पड़ेगा।"

"क्यों भाई, तुम्हें अपना विचार क्यों बदलना पड़ेगा?"

"जब आपका हमारे देश और हमारे घर में आज ऐसा अपमान हुआ तो क्या मुझे आपके देश में आने का हक है?" उसकी इतनी बुद्धिमानी की बातें सुनकर तो हम ताज्जुब में पड़ गये। हमने उसे समझाया : "तुम्हें ऐसी बात नहीं सोचनी चाहिए। अगर किसी एक व्यक्ति ने कोई गलती की तो उसका दण्ड तुम्हें क्यों भुगतना पड़ेगा? इसके साथ पोलैण्ड में तो हम कई सप्ताहों से हैं। यहाँ के लोग बड़े अतिथि-प्रेमी हैं। हमें किसी तरह की तकलीफ़ नहीं हुई। जब यहाँ के लोगों ने हमें इतना प्रेम और आतिथ्य दिया है तो हमारा भी कर्तव्य है कि पोलैण्ड के लोगों को हम भारत आने के लिए आमंत्रित करें, इसलिए तुम्हें हमारा सप्रेम आमंत्रण है। तुम अवश्य आना।"

बालक बोला : "ठीक है। आप मेरे घर चल रहे हैं। मगर

मेरे घर पर आप प्रसन्न हो जायेंगे तो मैं समझूंगा कि हमारे स्कूल में जो गुस्ताखी हुई उसका प्रायश्चित्त हो जायेगा। फिर मैं अवश्य आऊँगा। आपके देश का दर्शन करूँगा। आपके घर पर अतिथि बनूंगा।"

बातों ही बातों में हम उसके घर पहुँच गये। "माँ-माँ वह चिल्ला उठा : "देखो, मेरे साथ कौन आये हैं। अतिथि, बहुत दूर देश के अतिथि। इनके ही देश में है ताजमहल। जल्दी से चाय तैयार करो। नाश्ता बनाओ। इनका स्वागत करेंगे।" वह भागकर माँ के गले लिपट गया। हम मन्त्र-मुग्ध होकर उसे देख रहे थे। माँ बहुत खुश हुई। बालक ने हमारा थैला पीठ पर से उतारने में हमारी मदद की।

"हमारे स्कूल में आपके साथ जो गुस्ताखी हुई, क्या उसे माफ कर दिया ?" बालक ने मेज पर चाय की प्याली रखते हुए पूछा। मैं तो इस चतुर बालक के कौशल पर और उसके निश्छल प्यार पर न्यौछावर हो रहा था। एक ओर स्कूल का प्रधानाध्यापक और दूसरी ओर यह निश्छल बालक ! इतने में बालक के चाचा दैनिक अखबार हाथ में लिए पहुँच गये। ज्यों ही वे कमरे में पहुँचे। उन्होंने हमें देखते ही कहा : "पोजनान एक्सप्रेस के प्रथम पृष्ठ पर आपका चित्र है।" और उन्होंने अखबार दिखाया। फिर क्या कहना। बालक उछल पड़ा अपने चाचा के कंधों पर।

हम दस-पन्द्रह मिनट के लिए आये थे। दो-तीन घण्टे लग गये। बालक हमें छोड़ना नहीं चाहता था। हमारा भी जी नहीं चाहता था कि हम इस प्रेमपूर्ण वातावरण को छोड़कर जायें पर यात्री का मानस भी कुछ अजीब होता है। वह न जाने कितने स्थानों पर प्रेम पाता है, प्रेम देता है और फिर उस प्रेम को छोड़कर आगे बढ़ जाता है, एक मुसाफिर कभी समझ नहीं पाता। हम विदा हुए, पर श्री वोसेइच सिम्बोर्स्की नाम के उस बालक को भूल पाना असम्भव है।

जर्मनी

डा० लूथर बोल्र्स

पोलैण्ड की यात्रा पूरी करने के बाद हम लोगों ने विभाजित जर्मनी में प्रवेश किया। नेशा-प्रोडर की सरहद से पूर्वी जर्मनी में आकर हमने एक पत्र पूर्वी जर्मनी के प्रधानमन्त्री श्री ग्रोटोवाल के नाम पर लिखा : "हम कुछ दिन में बर्लिन पहुँचेंगे। बर्लिन में हमारा किसी से परिचय नहीं है। आपके साथ जर्मनी के विभाजन और बर्लिन के विभाजन की समस्या पर विचार विमर्श करना चाहते हैं। आशा है आप हमें समय देंगे।"

हमारा यह पत्र प्रधानमन्त्री के कार्यालय में पहुँचा तो इस पर अविलम्ब कारंवाई की गई। जब हम बर्लिन शहर की सीमा पर पहुँचे तब नेशनल फ्रण्ट नाम की संस्था के दो प्रतिनिधि हमें मिले। इन प्रतिनिधियों ने हमसे कहा : "प्रधानमन्त्री जी बहुत अस्वस्थ हैं और लम्बे समय से अस्पताल में हैं। इसलिए आप कृपया उनके कार्यालय पर न जायें। प्रधानमन्त्री ने उप प्रधानमन्त्री तथा विदेश मन्त्री डा० लूथर बोल्ज से आपका स्वागत करने का अनुरोध किया है। आज तो

आप भी नाटो से अलग हो जाइए। पर हमारे प्रस्तावों का कोई उत्तर नहीं। ऐसी स्थिति में हम क्या कर सकते हैं ?"

स्प्रे नदी और विभिन्न जलाशयों से घिरा हुआ वर्लिन मध्य योरोप का सबसे बड़ा और सुन्दर नगर है। बाग-बगीचों तथा हरे-भरे पेड़-पौधों से सजी हुई यह भूतपूर्व जर्मन राजधानी व्यापार, उद्योग, विज्ञान और शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र रही है। लेकिन हिटलर के सेनावाद तथा हथियारपरस्ती के कारण यह नगरी आज एक ज्वालामुखी बनी हुई है। हिटलर फासिस्टवाद की सम्पूर्ण कथा इस नगरी की धरती पर लिखी हुई है और इसीलिए आज यह मनोहारी नगरी दो टुकड़ों में बँटकर सहमी हुई-सी खड़ी है। डा० बोल्स ने हमसे कहा : "हिटलर के सेनावाद और युद्ध-प्रेम ने वर्लिन के शांतिप्रेमी साधारण नागरिकों के सिर पर समस्याओं का यह बोझ लादा है, जो उतारे नहीं उतरता। यहाँ की सारी समस्या के मूल में है हिटलर का सेनावाद। उस सेनावाद ने लाखों निरीह मनुष्यों का संहार किया। जर्मनी के टुकड़े किये। और युद्ध की हार का अभिशाप भुगतने के लिए आज जर्मनी के लोग मजबूर हैं। इसलिए समस्या का हल तब तक नहीं होगा जब तक पश्चिमी जर्मनी की सरकार हिटलरवादी नीतियों का परित्याग न करे और हिटलरवादी शासकों को अपने शासन में से बहिष्कृत न करे।"

डा० बोल्स ने अपनी सप्त-सूत्रीय शांति योजना के बारे में बताते हुए कहा : "इस योजना में किसी भी परिस्थिति में हिंसा का सहारा न लेना, समस्त सैनिक सधियों से जर्मनी को मुक्त करना, युद्ध-प्रचार पर पाबंदी लगाना, पिछले महायुद्ध के संचालकों को शासन और सार्वजनिक क्षेत्र से हटाना आदि बातें शामिल हैं। विभाजित जर्मनी और बर्लिन की समस्या के समाधान के लिए यही एकमात्र मार्ग हमें दीख पड़ता है। हम चाहते हैं कि किसी न किसी रूप में पूर्वी और पश्चिमी

जर्मनी के एकीकरण का मार्ग प्रशस्त हो। इस इच्छा को हम जितना ही चरितार्थ करना चाहते हैं। उतनी ही बाधाएँ पश्चिमी जर्मनी की तरफ से पैदा की जाती हैं।"

हमने डा० बोल्स से पूछा : "आप लोगों ने इस दीवार का निर्माण करके पूरे पश्चिमी बर्लिन को इस प्रकार क्यों जकड़ दिया है ? चारों तरफ सीमेण्ट और कांटों की दीवार खड़ी करके पश्चिमी बर्लिन के अन्दर रहने वाले नागरिकों के लिए आपने क्यों कठिनाइयाँ पैदा कर दी हैं ?"

डा० बोल्स ने हमारे सवाल का उत्तर देते हुए कहा : "पश्चिमी बर्लिन के लोग इस दीवार से बहुत नाराज हैं। उन्होंने इस दीवार के नाम पर हमारे खिलाफ बहुत-सा झूठा प्रचार भी किया है, परन्तु सचाई यह है कि पश्चिमी बर्लिन को मोर्चा बनाकर वहाँ से मनचाही प्रवृत्तियाँ न चलायी जा सकें, इसी के लिए हमने इस दीवार का निर्माण किया है। पश्चिमी बर्लिन में जो जासूसी के व्यापक अड्डे बने हुए हैं तथा जो मनमानी सैनिक तैयारियाँ चल रही हैं उनसे किसी भी समय हमें खतरा हो सकता है। इसलिए हमें मजबूर होकर ही यह दीवार बनानी पड़ी। यह बाहर की दीवार तो कभी भी तोड़ी जा सकती है अगर हम अपने दिलों की दीवारों को तोड़ डालें। हमने तो केवल सीमेंट और कांटों की दीवार खड़ी की है, परन्तु दीवार के अन्दर वाले शासकों ने ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य और झूठे प्रचार की ऊँची-ऊँची दीवारें खड़ी कर रखी हैं। ऊपर से भले ही वे दीवारें दिखायी न पड़ती हों, पर असलियत में वे दीवारें कहीं ज्यादा खतरनाक हैं।"

इस प्रकार डा० बोल्स ने बड़े विस्तार से अपना विचार समझाया। पूर्वी जर्मनी के उप-प्रधानमंत्री और विदेशमंत्री के सान्निध्य में हमने लगभग ४० मिनिट का समय बिताया। वे बहुत व्यस्त थे। हमारे सवालों का उत्तर अपने किसी भी प्रतिनिधि से दिलवा सकते थे, फिर

इसलिए यूथ होस्टल की योजना सचमुच एक आदर्श योजना हमें लगी। अब तो यह यूथ होस्टल आन्दोलन अन्य देशों तक भी पहुँचा है और जगह-जगह यूथ होस्टलों का निर्माण हो रहा है। हानोवर का यह 'हाउस युगेन' भी ऐसा ही एक यूथ होस्टल था।

जब हम गोष्ठी में पहुँचे तो अनेक युवक और प्रौढ़ साथी उपस्थित थे। यहीं पर हमारी भेंट हुई—प्रो० हैकमेन से। मोटे फ्रेम के चश्मे में से झाँकती हुई चमकदार आँखों ने पहले ही दृष्टिपात में बहुत कुछ कह डाला। लगभग दो घण्टे तक गोष्ठी चली। दिल्ली से हानोवर तक की तेरह महीने की कहानी सुनने के लिए सभी लोग गहरी दिलचस्पी से उतावले हो रहे थे। खास तौर से साम्यवादी देशों की यात्रा के अनुभवों और संस्मरणों में सभी का आकर्षण था। इसी तरह से भारत के साथ संबंधित अनेक समस्याओं में भी लोगों की जिज्ञासा थी। अनेक तरह के सवाल पूछे जा रहे थे। प्रो० हैकमेन भी बीच-बीच में हिस्सा ले रहे थे। उनके विचारों में जो संतुलन और सूक्ष्म विश्लेषण था उसके सामने हमें बार-बार नतमस्तक होना पड़ता था।

गोष्ठी समाप्त हुई। प्रोफेसर ने कहा: "आज आप मेरे मेहमान होंगे। मेरे घर पर ही आपको सोना है। मेरा भाग्य है कि आप जैसे अतिथि मुझे मिले।" प्रोफेसर ने मेरा हाथ पकड़ते हुए कहा।

मैं बोला: "भाग्य तो मेरा है कि हमें आपका सत्संग प्राप्त होगा। और आपके विचारों में अधिक गहराई से उतरने का अवसर मिलेगा।"

प्रोफेसर के निष्कपट और विनयशील स्वभाव के प्रति मैं श्रद्धानत होकर उनके साथ-साथ चलने लगा। मेरा थैला प्रोफेसर ने उठा लिया। "ऐसा नहीं हो सकता। मैं युवक यों खाली चलूँ और आप वयोवृद्ध के कंधे पर इतना भारी थैला रहे।" मैंने थैला छीनते हुए प्रोफेसर से कहा। झट प्रोफेसर विनोदी बन गए। "देखिए, जबर्दस्ती न कीजिए। जबर्दस्ती करना हिंसा है। पहले घर चलकर हमारा हृदय-परिवर्तन

प्रो० हैकमोल

२, जून। मंगलवार। सायंकाल।

हम हजारों कारों से भरी हुई हानोवर (पश्चिमी जर्मनी) की सड़कों को पार करके 'हाउस यूगेन' (युवक भवन) में पहुँचे। यहाँ ७ बजे शान्तिवादी कार्यकर्ताओं की एक गोष्ठी में हमें भाग लेना था। इस प्रकार की गोष्ठियों के लिए युवक भवन सचमुच एक आदर्श स्थान माना जाता है। एक तरह से यूथ होस्टल है। पश्चिमी जर्मनी में यूथ होस्टल का आंदोलन प्रारम्भ हुआ। छोटे-से-छोटे नगर में भी यूथ होस्टलों का निर्माण कराया गया। इन यूथ होस्टलों में युवक और विद्यार्थी प्रवासी आते हैं तथा सस्ते में ठहरते हैं। अगर इन युवक प्रवासियों को होटलों में ठहरना पड़े तो वह बहुत खर्चीला पड़ेगा,

इसलिए यूथ होस्टल की योजना सचमुच एक आदर्श योजना हमें लगी। अब तो यह यूथ होस्टल आन्दोलन अन्य देशों तक भी पहुँचा है और जगह-जगह यूथ होस्टलों का निर्माण हो रहा है। हानोवर का यह 'हाउस युगेन' भी ऐसा ही एक यूथ होस्टल था।

जब हम गोष्ठी में पहुँचे तो अनेक युवक और प्रौढ़ साथी उपस्थित थे। यहीं पर हमारी भेंट हुई—प्रो० हैकमेन से। मोटे फ्रेम के चश्मे में से झाँकती हुई चमकदार आँखों ने पहले ही दृष्टिपात में बहुत कुछ कह डाला। लगभग दो घण्टे तक गोष्ठी चली। दिल्ली से हानोवर तक की तेरह महीने की कहानी सुनने के लिए सभी लोग गहरी दिलचस्पी से उतावले हो रहे थे। खास तौर से साम्यवादी देशों की यात्रा के अनुभवों और संस्मरणों में सभी का आकर्षण था। इसी तरह से भारत के साथ संबंधित अनेक समस्याओं में भी लोगों की जिज्ञासा थी। अनेक तरह के सवाल पूछे जा रहे थे। प्रो० हैकमेन भी बीच बीच में हिस्सा ले रहे थे। उनके विचारों में जो संतुलन और सूक्ष्म विश्लेषण था उसके सामने हमें बार-बार नतमस्तक होना पड़ता था।

गोष्ठी समाप्त हुई। प्रोफेसर ने कहा : "आज आप मेरे मेहमान होंगे। मेरे घर पर ही आपको सोना है। मेरा भाग्य है कि आप जैसे अतिथि मुझे मिले।" प्रोफेसर ने मेरा हाथ पकड़ते हुए कहा।

मैं बोला : "भाग्य तो मेरा है कि हमें आपका सत्संग प्राप्त होगा। और आपके विचारों में अधिक गहराई से उतरने का अवसर मिलेगा।"

प्रोफेसर के निष्कपट और विनयशील स्वभाव के प्रति मैं श्रद्धानत होकर उनके साथ-साथ चलने लगा। मेरा थैला प्रोफेसर ने उठा लिया। "ऐसा नहीं हो सकता। मैं युवक यों खाली चलूँ और आप वयोवृद्ध के कंधे पर इतना भारी थैला रहे।" मैंने थैला छीनते हुए प्रोफेसर से कहा। झट प्रोफेसर विनोदी बन गए। "देखिए, जबर्दस्ती न कीजिए। जबर्दस्ती करना हिंसा है। पहले घर चलकर हमारा हृदय-परिवर्तन

चाहिए और हमें समझाइए कि मेहमान पैसा उठाए और मेजबान खामोश रहे, क्या यह ठीक है।"

आखिर किसी भी तरह प्रोफेसर साहब ने हमें पैसा नहीं दिया। हम उनके घर पहुँचे।

टेबल पर भोजन परोसते हुए श्रीमती प्रोफेसर ने कहा : "इसी जगह इसी तरह हमें भारत के माननीय शिक्षाशास्त्री श्री आर्यनायकम्‌जी ने भी आतिथ्य का अवसर प्रदान किया था। वे दो दिन यहाँ रहे। पर आप कल ही चले जाना चाहते हैं। आप भी कम-से-कम दो दिन तो रहिए।"

"हम बहुत आनंदित होते, यदि यहाँ अधिक रुककर आपका सान्निध्य प्राप्त कर सकें, परन्तु आगे का पूरा कार्यक्रम बन गया है। इसलिए हमें जाना होगा।" मैंने निवेदन किया। इतने में प्रोफेसर ने गांधीजी की कुछ पुस्तकें दिखाते हुए कहा, "पिछले लम्बे समय से मैं इन पुस्तकों में खोया हुआ हूँ। खास तौर से 'सत्याग्रह' पुस्तक ने तो मेरे सोचने की दिशा को ही आलोकित कर दिया है। नेहरू की पूरी श्रद्धा शायद गांधीजी के रास्ते पर नहीं है, मुझे यह कहते हुए बड़ी वेदना होती है कि भारत गांधीजी के विचारों पर नहीं चल रहा है। नेहरूजी न तो पूरी तरह से अहिंसावादी हैं और न पूरी तरह से राजनीतिज्ञ। इस बीच की स्थिति में मुझे ज्यादा खतरा मालूम देता है। न इस पार न उस पार!"

मैंने कहा : "नेहरू महात्माजी के सच्चे उत्तराधिकारी हैं तो, पर अहिंसा और सत्य का आदर्श राजनीति के क्षेत्र में व्यावहारिक नहीं है।"

प्रोफेसर बोले : "महात्माजी राजनीति में सत्य और अहिंसा को व्यावहारिक सिद्ध कर चुके हैं। आप इन आदर्शों को अव्यावहारिक कहकर अपने पण्डितजी को बचा नहीं सकते।"

मैंने कहा : "गांधीजी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी विनोबा हैं और वे गांधी-विचारों को जाग्रत रखने का प्रयत्न कर रहे हैं।"

"पर इनमें भी मैं संतुष्ट नहीं हूँ। मुझे लगता है कि विनोबा नेहरू तथा शासन के विरुद्ध कभी नहीं जाते। विनोबा और नेहरू घनिष्ठ मित्र हैं। हालांकि विनोबा क्रांतिकारी बनना चाहते हैं और नेहरू एक शासक हैं। क्रांतिकारी और शासक मित्र नहीं हो सकते। क्रांति समाज में बुनियादी परिवर्तन लाना चाहती है, जबकि शासन स्थिति-स्थापकता और स्टेटस-को चाहता है। इसलिए भारत में आजादी आयी, लेकिन क्रांति नहीं हुई। सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था में बुनियादी परिवर्तन नहीं हुआ।"

प्रोफेसर हैकमेन जैसे एक विदेशी विचारक के मुंह से यह समालोचना सुनकर मुझे कुछ आश्चर्य भी हो रहा था।

"देखिए, रात बहुत हो गयी है। मेहमान को सोने दीजिए।" प्रोफेसर-पत्नी ने बातचीत को भंग करते हुए कहा। उन्होंने मेरे लिए बिस्तर लगाया और आराम करने की मीठी-सी आज्ञा दी। प्रभाकर बगल के ही एक दूसरे शांतिवादी मित्र के यहां ठहरा हुआ था।

मैं प्रोफेसर के पढ़ने के कमरे में सोया। ठीक सामने की दीवार पर बापू का एक छोटा-सा, पर बहुत गम्भीर चित्र टँगा हुआ था।

"गांधीजी ने इस दुनिया को एक नया विचार दिया है। वह विचार साम्यवाद के विचार से भी ज्यादा अद्यतन है। गांधीजी के विचार में साम्यवाद के सभी गुण आ जाते हैं और उसकी खामियाँ रह जाती हैं। इसलिए मुझे गांधीजी के विचारों में बहुत दिलचस्पी है।" प्रोफेसर हैकमेन ने कहा।

गम्भीर, अध्ययनशील और भारत के मित्र श्री हैकमेन के घर पर एक रात बिताना मेरे लिये बड़ा प्रेरणा पद रहा। २७ जून, १९६२ की वह रात्रि भुलायी नहीं जा सकती।

मेडम एलिज़ाबेथ डिब्रिश

वर्लिन से हानोवर होते हुए हम डूसलडोर्फ पहुँचे। १० जुलाई, ६३ का वह दिन था। डूसलडोर्फ में हम मेडम एलिजाबेथ डिब्रिश के अतिथि थे। मेडम एलिजाबेथ के साथ हमारी पहली मुलाकात वर्लिन में हुई थी। तव वे मॉस्को से लौटते हुए पूर्वी वर्लिन के शांतिवादियों से मिलने के लिए रुकी थीं। उनके साथ वर्लिन की स्प्रे नदी में नौका-विहार का आनंद उठाया था। वहीं मेडम एलिजाबेथ ने हमें डूसलडोर्फ आने के लिए आमंत्रण दिया और मेहमान बनने का आग्रह किया था।

जव हम डूसलडोर्फ पहुँचे तो इसकी सूचना हमने मेडेम एलिजाबेथ को दी। उन्होंने कार से आकर रास्ते में ही हमारा स्वागत किया। रास्ते में हमें कहीं भूख न लग जाये, इसलिए सैण्डविच के कई पैकेट, कुछ फल और चॉकलेट के डिब्बे साथ में ले आयीं। वे डूसलडोर्फ के शांतिवादी लोगों में अपना प्रमुख स्थान रखती हैं। उनका व्यक्तित्व बड़ा ममतामय है। उन्होंने हमारी सुविधा के लिए ठहरने का प्रबंध ए...ल में किया।

... का यह अपना विशेष रिवाज है कि वहाँ लोग अपने अतिथियों
... राते हैं ताकि उन्हें किसी तरह से असुविधा न हो।
... औद्योगिक नगरी है। गगनचुम्बी अट्टालिकाओं
व ... ँ भी देखिए, आपको कारें ही कारें नजर
आयें ... लहिन की तरह सजी
... चकाचौंध,

नया राग-रंग, नई चमक-दमक। हमें मेडम एलिजाबेथ ने शहर में चारों तरफ घुमाया। वे हमें अपने घर पर भी ले गयीं। उनके घर पर ही हमारी मुलाकात कुमारी क्रिस्ता लुकहार्ट से भी हुई। कुमारी क्रिस्ता बड़ी प्यारी अंग्रेजी बोलती थीं। उसके सौंदर्य में एक सौम्य आकर्षण था। सुनहरे बालों वाली यह जर्मन बाला हमें मेडम एलिजाबेथ की बातों को समझने में मदद करती थी। मेडम एलिजाबेथ को अंग्रेजी या हिंदी भाषा तो आती नहीं थी, इसलिए कुमारी क्रिस्ता को दुभाषिया बनकर हमारे साथ-साथ रहना पड़ा। वह कालिज की छात्रा है, परन्तु राजनीति में बेहद दिलचस्पी लेती है। केवल दुभाषिया ही नहीं, हमारी बातचीत में बराबरी से हिस्सा भी लेती थी।

मेडम एलिजाबेथ ने हमें बताया कि आज पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी का अलग-अलग होना ही सारी समस्या की जड़ है। ये दोनों देश केवल राजनैतिक आधार पर बँटे हुए हैं। सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से तो पूरा देश एक ही है। परन्तु अब जबकि दोनों देश अलग-अलग हैं, हमें इस स्थिति को स्वीकार करना ही पड़ेगा। पश्चिमी जर्मनी की सरकार पूर्वी जर्मनी की सरकार के अस्तित्व को अस्वीकार करके समस्या का हल नहीं निकाल सकेगी। यह तो निश्चित ही है कि पूर्वी जर्मनी की सरकार बहुत बड़ा काम कर रही है, फिर उसे स्वीकार क्यों न किया जाये। अगर हम लोग पूर्वी-जर्मनी की सरकार को मान्यता दे दें तो उनके साथ सीधी बातचीत का द्वार खुल सकता है। आगे चलकर जर्मनी के एकीकरण का भी कोई रूप निकल सकता है।"

हमारे पास ही एक और सज्जन बैठे थे। वे बोले : "ये रूसी लोग बड़े भमकर हैं। इन्होंने हमारे देश को तो दो टुकड़ों में बांट ही रखा था, अब बर्लिन के बीच में दीवार खड़ी करके उस खूबसूरत नगर को भी दो टुकड़ों में बाँट डाला। यदि हमारी धरती पर

आकर बैठ जाता हूँ और घण्टों इसकी धुन में अपने आपको खोये रखता हूँ। अगर यह न हो तो शायद मैं जिन्दा न रह सकूं। यह पियानो ही मेरा सच्चा साथी है।"

श्री डी मोट प्रतिदिन धूप-स्नान लेते हैं। वैसे बेल्जियम में धूप उतनी आसान नहीं है, जितना हम भारत में प्रतिदिन धूप प्राप्त करते हुए समझते हैं। इसलिए गरमी के दिनों में ही धूप की पर्याप्त मात्रा प्राप्त होती है। वे ऐसा मानते हैं कि उनके शरीर को स्वस्थ रखने के लिए इस धूप से बढ़कर और कोई दवा नहीं हो सकती। सूरज की किरणें शरीर के अन्दर से रोगों को खींच लेती हैं, यह उनकी मान्यता है।

श्री डी मोट ने हमें ब्रूसेल्स शहर की परिक्रमा भी करायी। ब्रूसेल्स योरोप का निश्चय ही एक खूबसूरत शहर है। ब्रूसेल्स को छोटा पेरिस कहकर पुकारा जाये तो शायद अत्युक्ति नहीं होगी, हालाँकि यहाँ का जीवन महँगा है, पर सड़कों के किनारे फुटपाथों पर बने हुए छोटे-छोटे और सुन्दर रेस्तरां शहर की शोभा को कई गुना कर देते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि प्राप्त स्थापत्य के कई नमूने भी यहाँ देखने को मिलते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का भवन अपने ढंग का निराला भवन है।

बेल्जियम में भी भाषा की समस्या काफी तीव्र है। श्री डी मोट ने हमें बताया : "हमारे देश में फ्लेमिश भाषा बोलनेवालों का बहुमत है, परन्तु वालून लोग, जिनकी भाषा फ्रेंच है, फ्लेमिश भाषा को स्थान देने के लिए तैयार नहीं हैं। इसलिए फ्लेमिश भाषी लोग काफी तीव्र आन्दोलन चला रहे हैं। फ्लेमिश भाषी लोग तो फ्रेंच सीखते हैं, पर फ्रेंच भाषी फ्लेमिश भाषा नहीं सीखते। यही समस्या है।" इस प्रकार श्री डी मोट के साथ हमने बहुत अच्छा समय बिताया।

फ्रांस

श्री लांजा देलवास्तो

●

श्री लांजादेलवास्तो भारत के लिए बहुत अपरिचित नहीं हैं। वे भारत में कई बार आ चुके हैं। मैंने उनका नाम कई बार सुना था। अभी से लांजा के प्रति मेरे मन में एक विशेष आकर्षण था। पर उनसे मिलने का शुभवसर कब आयेगा, इसकी कोई कल्पना नहीं थी।

बेल्जियम की यात्रा पूरी करके जब हम फ्रांस पहुँचे और वहाँ के खूबसूरत गाँवों की यात्रा करने लगे तो मेरे मन में आया कि यहाँ तो लांजा से भेंट होनी ही चाहिए। पर हो कैसे? हम, फ्रांस के उत्तरी भाग में यात्रा कर रहे थे और लांजा दक्षिणी फ्रांस में थे। इसी बीच मध्य फ्रांस के एक प्रमुख शहर लियों में शांतिवादी कार्यकर्ताओं का एक सम्मेलन होने जा रहा था। आयोजकों ने हमें इस सम्मेलन में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया। लांजा भी इस सम्मेलन में आये। उनसे मिलने का अवसर आसानी से प्राप्त हो गया।

ऊँचा ललाट, दुग्ध-धवल दाढ़ी के बीच लम्बा और धवल चेहरा, चमकीली आँखें, वजनदार आवाज, वेशभूषा में बहुत सादगी, कंधे पर लटकता हुआ एक थैला, पैबंद लगा हुआ नीला पायजामा और उस पर नीला कोट, यही हैं लांजादेलवास्तो, जिन्हें फ्रांस के लोग प्यार से केवल लांजा कहकर पुकारते हैं। बापू के साथ करीब डेढ़ साल रहने के बाद शत-प्रतिशत गांधीवादी बन गये और इसलिए बापू ने उनका नाम रखा, शांतिदास।

लिओं के शांति सम्मेलन में हम तीन दिन रहे। पर लांजा के साथ व्यक्तिगत रूप से बातचीत करने का समय नहीं मिल सका। मैंने लांजा से इस बात के लिए अफसोस जाहिर किया, तब लांजा ने कहा : "फ्रांस में आकर हमारे आश्रम में न चलें, यह कैसे हो सकता है ? सम्मेलन के बाद मेरे साथ ही चलिए और तब जमकर बातें होंगी।" हमारे लिए तो यह निमंत्रण सौभाग्य की बात थी। आखिर चलने का तय हुआ और ८ सितम्बर की शाम को सम्मेलन समाप्त होते ही लिओं से आश्रम तक की डेढ़-सौ मील की यात्रा हमने कार से प्रारम्भ की। लगभग तीन ३ घण्टे का समय अत्यन्त निर्विघ्न और हमारी बातचीत के लिए बहुत अनुकूल था। पूरा रास्ता ह्रोन नदी के किनारे-किनारे जा रहा था। ५० मील प्रति घण्टे की चाल से कार दौड़ रही थी। काली रात्रि के घूंघट से आधा चंद्रमा हमें झाँकता हुआ यों आगे-आगे चल रहा था मानो वह पायलेट बनकर चल रहा हो। ऊँचे-ऊँचे पेड़ों को छूकर आनेवाले हवा के झोंके एक नयी ताजगी दे रहे थे और हम लांजा को पंद्रह महीने की अपनी पैदल यात्रा का वृत्तांत सुना रहे थे। लांजा ने हमारी यात्रा की, एक-एक देश के बारे में अलग-अलग कहानी सुनी। बीच-बीच में वे अनेक सवाल पूछ रहे थे। अफगानिस्तान के पहाड़ों, ईरान के रेगिस्तानों, रूस के बर्फीले मैदानों और बर्लिन की दीवारों को लांघने में हमें कोई कष्ट तो नहीं

हुआ ? यह सवाल उन्होंने ऐसे पितृ-वात्सल्य से पूछा मानो वे हम पर सारा प्यार उँड़ेले दे रहे हों। फिर सोवियत संघ और वहाँ की कम्युनिस्ट समाज व्यवस्था के बारे में उन्होंने बहुत विस्तार से पूछा।

हमारी बातचीत के दौरान लांजा ने भारत के शांति-आंदोलन के बारे में भी चर्चा की और कहने लगे : "आज पश्चिम के लोग भारत की ओर एक उत्सुक नजर से देख रहे हैं, क्योंकि पाणविक शस्त्रों ने मानव को विनाश के कगार पर पहुँचा दिया है। अगर भारत जैसा प्राचीन, मजबूत और महान् देश ऐसा कोई मार्ग इस दुनिया को दिखा सके, जिससे कि अणुशस्त्रों से भयभीत विश्व अपनी सुरक्षा का कोई मार्ग पा जाये तो यह भारत का विश्व पर सबसे बड़ा उपकार होगा। वरना अगर हम इसी तरह शस्त्रों की प्रतियोगिता में दौड़ते रहे तो संसार का विनाश अनिवार्य है।"

कार दौड़ी जा रही थी। फ्रांस की धरती कितनी सुंदर है और कितनी हरी-भरी है, यह हम अपनी आँखों से निहारते जा रहे थे। ह्रोन नदी की कल-कल धारा हमें गंगा, यमुना आदि नदियों की याद दिला रही थी।

बातों-ही-बातों में हम लांजा के आर्क आश्रम में पहुँच गये।

पहाड़ियों की तराई में बसा हुआ यह आर्क आश्रम घनी हरियाली और पेड़-पौधों से घिरा हुआ है। तारों भरे आकाश के नीचे हम खड़े थे। आश्रम में बिजली के बल्ब नहीं जलते। मोम से जलनेवाली टिमटिमाती लौ में आश्रमवासी इधर-उधर आ-जा रहे थे। फ्रांस जैसे देश में बिना बिजली के रहना सचमुच एक आदर्शवादिता है। पिछले कई महीनों से हमने एक भी रात बिना बिजली के नहीं गुजारी होगी, इसलिए यहाँ का अंधेरा बड़ा शीतल और सुहावना लग रहा था। यदि कभी ज्यादा प्रकाश की जरूरत हो तो मैदान में घास-फूस जलाकर आग का प्रकाश प्राप्त कर लिया जाता है। प्रकृति के निकट आने की यह

प्रक्रिया है। उपलब्ध बिजली से थककर ये लोग अंधेरे में शांति की खोज कर रहे हैं।

यह आर्क आश्रम क्रिश्चियन विचार-पद्धति के आधार पर चलने-वाला एक आश्रम है, जिसमें लांजा ने अपने ढंग से अनेक नयी बातें जोड़ी हैं। उन्होंने बहुत बातें भारत में गांधीजी के आश्रमों से भी सीखी हैं। हमने आश्रम की विभिन्न गतिविधियों को देखते समय पाया कि आश्रम की बहनें चरखा कातने में और बुनाई करने में बड़ी निपुण हैं। बिना टेबल-कुर्सी के चटाई पर बैठकर भोजन करना, सारा काम अपने हाथों से करना, आदि बातें विशेष रूप से अपनायी गयी हैं। श्री लांजा ने कहा : "हमने समझ-बूझकर गरीबी का जीवन अपनाया है और हम क्रिश्चियन आदर्शों के आधार पर अहिंसा की साधना करते हैं। जीवन में पैसे का व्यवहार हमारे यहाँ कम-से-कम किया जाता है। स्वनिर्भर बन कर अहिंसक जीवन पद्धति सारे समाज के लिए प्रस्तुत कर सकें यही हमारा आदर्श है। भले ही हमारी इस गरीबी को योरोप के 'हाई लिविंग स्टैण्डर्ड' वाले समाज में असांस्कृतिक और व्यर्थ का कहा जाता हो, पर दुनिया का अधिकांश हिस्सा जिस जीवन को जीता है उसकी तादाद में और भी जोड़ने के लिए हमारा यह प्रयोग है।

इस समय आश्रम में ६० भाई-बहनें और बच्चे हैं। सबका सामूहिक भोजनालय है। प्रत्येक भाई-बहन ८ घण्टे शरीर श्रम करते हैं। बाकी समय में अध्ययन, ध्यान, प्रार्थना आदि करते हैं। लांजा १९३६-३७ में भारत की यात्रा पर आये थे। वहीं पर गांधीजी से मिले। गांधीजी ने उनको बेहद प्रभावित किया और इसलिए फ्रांस में भी गांधीजी का का काम करने की इच्छा उनके मन में जाग्रत हुई। १९४० में वे पेरिस में ही कुछ मित्रों की गोष्ठी बनाकर प्रति सप्ताह कताई-सभाओं का आयोजन करते रहे। फिर १९४८ में पांच-सात मित्रों के साथ एक आश्रम शुरू किया। इसी बीच वे फिर १९५४ में भारत आये।

वहाँ से वापस आने के बाद यह आर्क आश्रम स्थापित
आश्रम के मित्र फ्रांस के अलावा, इटली, स्वीट्ज़रलैण्ड,
दक्षिण अमेरिका आदि देशों में फैले हुए हैं।

पेरिस में लांजा ने एक नयी संस्था भी चलायी है,
है 'फ्रेण्ड्स ऑफ गांधी।' इस संस्था के सदस्य नियमित
में मिलते हैं और गांधीजी के विचारों पर, उनके साहित्य पर
विमर्श करते हैं। मुझे भी एक दिन इस संस्था के सदस्यों की
शामिल होने का अवसर मिला। मुझे लगा कि पेरिस जैसे शहर में,
औद्योगीकरण और आधुनिकता अपने चरमोत्कर्ष पर है, ऐसे लो
हैं जो इस प्रवाह के खिलाफ सोचते हैं और कुछ नयी दिशा में
का प्रयत्न करते हैं। इस संस्था को लांजा का मार्ग-दर्शन
मिलता रहता है।

लांजा का जन्म १६०१ में दक्षिण इटली में एक सम्भ्रान्त राज-परिवार में हुआ। वे कलाकार के रूप में जन्मे। इटली में प्रारंभिक शिक्षा पूरी करने के पश्चात वे फ्रांस आ गए। बचपन से ही कविताओं के प्रति रुझान था। जब देखो तब वे कागज-कलम लिए कुछ पंक्तियां लिखते रहते। बाद में चलकर तो वे एक प्रख्यात कवि बने। उन्होंने १५-१६ पुस्तकें लिखीं, जिनमें कुछ पुस्तकें काफी बड़ी-बड़ी हैं। कवि और लेखक के साथ-साथ वे संगीतज्ञ भी हैं। उनके पास एक खास तरह का अपना वाद्य है, जो तम्बूरे जैसा लगता है। वे अपने इस तम्बूरे को लेकर निकल पड़ते हैं, पहाड़ों में, खेतों में, खलिहानों में। उन्हें अपना तम्बूरा और प्रकृतिका सान्निध्य मिल जाये तो और क्या चाहिए? यह कवि, लेखक और संगीतज्ञ एक चित्रकार भी है, यह मुझे तब मालूम हुआ जब मैंने उनके कमरे में लगे हुए चित्रों के बारे में पूछताछ की। मैं समझता था कि ये चित्र शायद किसी प्रसिद्ध कलाकार के होंगे। पर पूछने पर मालूम हुआ कि उन चित्रों

"यहाँ बन्द कमरे में बैठे-बैठे कुछ मजा नहीं आ रहा है। चलिए जरा बाहर खुले आसमान में, प्रकृति के सानिध्य में घूमें। बाहर खूबसूरत चाँद है।" हम दोनों निकल पड़े लाज से बाहर। महल के चारों ओर घना-सा जंगल है। उसी के अन्दर चारों तरफ सड़कें हैं। हम निकल पड़े एक सुनसान और शांत सडक पर। कोई तीन-चार फर्लांग आगे जाकर हम एक ऊँचे से टीले पर बैठ गये। कितनी सुन्दर रात्रि चारों तरफ बिखरी हुई थी। ऊँचे-ऊँचे पेड़ बड़े शान्त और नीरव भाव से खड़े थे। मन में एक गुदगुदी-सी पैदा हो रही थी। टीले पर बैठते ही पेनी मेरा सहारा लेकर अधलेटी—सी पड़ गयी। हम लोग बातें करते रहे।

पता ही नही चला कि कितना समय बीत गया।

अचानक नजर घड़ी पर पड़ी। एक बज रहा था। मैंने पेनी से कहा : "अब बातें समाप्त करो और चलो। बहुत रात हो गयी है।" हम वापस आये। भोजनालय का मकान रास्ते में पड़ता था, इसलिए पेनी बोली कि क्यों न एक प्याली मदिरा की लेते चलें। तब मुझे मालूम हुआ कि भोजनालय की इन्चार्ज पेनी ही है। चाभी उसी के पास रहती है। हम भोजनालय के अन्दर गये। रेफ्रीजरेटर में से फ्रेंच मदिरा की एक अच्छी-सी बोतल निकाली। हमने दो-दो प्यालियाँ मदिरा की ली।

फ्रांस में मदिरा उसी तरह से पी-पिलायी जाती है जैसे सोवियत संघ के आरमेनिया गणराज्य में। आप चाहें नाश्ते की टेबल पर हो, दोपहर के भोजन का समय हो या रात का भोजन खाने के समय; मदिरा की बोतल और गिलास खाने के पास रखना फ्रांस के लोग अनिवार्य मानते हैं। जैसे हमारे यहाँ भोजन के साथ पानी का लोटा और गिलास दी जाती है।

करीब पौने नौ बजे रात के हो गए थे और तब हम आराम को गये।

दूसरे दिन हमारे शिविर के साथी पार्टी पेरिस के लिए रवाना हो रहे थे। उनके लिए एक विशेष बस का प्रबंध किया गया था। इसलिए हमें भी बसों को देखने जाना था, लेकिन पेनी ने मुझे कहा : इतनी भी क्या जल्दी है। अगर दो दिन और यहीं रुक जाएं तो क्या नुकसान हो जाता है। पेरिस में ऐसा क्या भी रखा है? दो दिन के बाद मेरी भी छुट्टियां खत्म होती हैं और मैं भी आप के साथ पेरिस तक चलूंगी। मेरे सामने एक और धर्म संकट पैदा हो गया। रहूं या जाऊं? मैंने प्रभाकर से कहा कि अगर तुम इन सब लोगों के साथ पेरिस चले जाओ और मैं दो दिन बाद आऊं तो कोई आपत्ति तो नहीं होगी। प्रभाकर ने मेरे मन की बात को स्वीकार कर लिया। हमारे शिविर के सब साथियों को और प्रभाकर को लेकर बस चली गयी। मैं शार्तो-शिविर में ही रहा।

शिविर के लोगों के चले जाने से महल काफी खाली हो गया था। छात्र-छात्राओं पर काम का बोझ भी कम रह गया था। इसलिए पेनी को भी कुछ ज्यादा फुर्सत थी। शिविर समाप्त हो जाने से मैं तो पूरी तरह से खाली ही था, इसलिए हम लोग शार्वोनियेर गांव में तथा आसपास के स्थानों में घूमने के लिए जी भर कर साथ-साथ जाते थे। पेनी बहुत अच्छी फ्रेंच जानती है, इसलिए उसके साथ हो जाने के बाद कहीं भी चले जाने में कोई दिक्कत पैदा नहीं होती थी। फ्रांस अपने प्राचीन राजमहलों के लिए बहुत मशहूर है। जगह-जगह ऐसे ऐतिहासिक स्थापत्यवाले राजमहल यात्रियों और दर्शकों को आकृष्ट करते हैं। हम भी उन महलों को देखने गये। फ्रांस के चर्च भी, जिन्हें कैथिड्रल कहा जाता है, बहुत कलापूर्ण और प्रसिद्ध होते हैं। मदुराई के मीनाक्षी मंदिर की तरह ये ऊंचे-ऊंचे कैथिड्रल स्थापत्य कला के अद्भुत नमूने ही हैं। पेनी के साथ मैंने शार्ट्स का सुप्रसिद्ध

कैथिड्रल देखा। वहाँ पर ईसाई धर्म से संबंधित [illegible]
इतने अच्छे ढंग से किया था कि देखकर उस जमाने के
बारे में सहज कल्पना की जा सकती है। जैसे हमारे यहाँ
मे कुछ अद्भुत कला के नमूने देखने को मिलते हैं, वैसे
कैथिड्रल में भी ऐसे नमूने हैं। दो दिन के बाद पेनी और
साथ पेरिस आये। और वहाँ के भी अनेक महत्वपूर्ण [illegible]
लोग गये। वहाँ का नोत्रदाम कैथिड्रल भी हमने देखा। यह
विश्व-प्रसिद्ध है और वास्तव में स्थापत्य-कला का एक विशिष्ट
है। पेनी को उसी रात ब्रिटेन के लिए रवाना होना था, [illegible]
दिन भर पेरिस घूमने का आनन्द लेते रहे। सार्वोनियेर से [illegible]
तथा मदिरा पेनी ने साथ मे रख ली थी, इसलिए वही हमारा दिन-
भर का भोजन रहा।

हम लोग 'प्लास डी ला कौंकोर्ड' मे घंटों बेंच पर बैठे-बैठे बातें करते रहे। उसके बाद सड़क के फुटपाथ पर बने हुए एक छोटे-से कॉफी हाउस मे कॉफी पीते रहे। ये 'साइड वॉक-काफी हाउस' पेरिस की अपनी विशेषता हैं। लोग फुटपाथों पर इस तरह के स्थानों में बैठकर कुछ खाने-पीने में बड़ा आनन्द लेते हैं। एक-एक कॉफी हाउस मे सैकड़ों लोग फुटपाथ पर बैठकर कॉफी पीते हैं। रंग-रंगीली कुर्सियाँ तथा रंग-रंगीले कपड़ोवाले छत्र लगे रहते हैं, जिससे कि धूप में ग्राहकों को तकलीफ न उठानी पड़े। ऐसे स्थानो पर बहुत-से स्टैण्ड लगे रहते हैं जहाँ से आप पेरिस अथवा फ्रांस से संबधित कुछ पिक्चर-पोस्टकार्ड, गाइड बुक आदि भी खरीद सकते हैं। फ्रांस के लोग कॉफी के बड़े शौकीन होते हैं, पर वे दूध या चीनी नहीं मिलाते। केवल कॉफी उबाल कर पीते हैं। पेनी को भी ऐसी ही कॉफी का शौक है। पर मेरे लिए कठिन था। कड़वी कॉफी। फ्रांस में कॉफी का कप भी बड़ा होता है।

१

मदिरा पीते-पीते रात के दो बज गये और तब हम जाकर सो पाये।

दूसरे दिन हमारे शिविर के सभी साथी पेरिस के लिए रवाना हो रहे थे। हमारे लिए एक विशेष बस का प्रबंध किया गया था। इसलिए हम सभी को उसी में जाना था, लेकिन पेनी ने मुझे कहा : इतनी भी क्या जल्दी है। अगर दो दिन और यहीं रुक जायेंगे तो क्या नुकसान होनेवाला है। पेरिस में ऐसा काम भी क्या है ? दो दिन के बाद मेरी भी छुट्टियां खत्म होती हैं और मैं भी आप के साथ पेरिस तक चलूंगी। मेरे सामने एक और धर्म-संकट पैदा हो गया। रहूं या जाऊँ ? मैंने प्रभाकर से कहा कि अगर तुम इन सब लोगों के साथ पेरिस चले जाओ और मैं दो दिन बाद आऊँ तो कोई आपत्ति तो नही होगी। प्रभाकर ने मेरे रुक जाने की बात को स्वीकार कर लिया। हमारे शिविर के अन्य साथियों को और प्रभाकर को लेकर बस चली गयी। मैं शार्वो-नियेर में ही रहा।

शिविर के लोगों के चले जाने से महल काफी खाली हो गया था। दास-दासाओं पर काम का बोझ भी कम रह गया था। इसलिए पेनी को भी कुछ ज्यादा फुर्सत थी। शिविर समाप्त हो जाने से मैं तो पूरी तरह से खाली ही था, इसलिए हम लोग शार्वोनियेर गाँव में तथा आसपास के स्थानों में घूमने के लिए जी भर कर साथ-साथ जाते थे। पेनी बहुत अच्छी फ्रेंच जानती है, इसलिए उसके साथ हो जाने के बाद कहीं भी चले जाने में कोई दिक्कत पैदा नहीं होती थी। फ्रांस अपने प्राचीन राजमहलों के लिए बहुत मशहूर है। जगह-जगह ऐसे ऐतिहासिक स्थापत्यवाले राजमहल यात्रियों और दर्शकों को आकृष्ट करते हैं। हम भी उन महलों को देखने गये। फ्रांस के चर्च भी, जिन्हें कैथिड्रल कहा जाता है, बहुत कलापूर्ण और प्रसिद्ध होते हैं। मदुराई के मीनाक्षी मंदिर की तरह ये ऊँचे-ऊँचे कैथिड्रल स्थापत्य कला के अद्‌भुत नमूने ही हैं। पेनी के साथ मैंने शॉर्ट्स का सुप्रसिद्ध

कैथिड्रल देखा। वहाँ पर ईसाई धर्म से संबंधित कहानियों का चित्रण इतने अच्छे ढंग से किया था कि देखकर उस ज़माने के कलाकारों के बारे में सहज कल्पना की जा सकती है। जैसे हमारे यहाँ पुराने मंदिरों में कुछ अद्भुत कला के नमूने देखने को मिलते हैं, वैसे ही फ्रांस के कैथिड्रल में भी ऐसे नमूने हैं। दो दिन के बाद पेनी और हम साथ-साथ पेरिस आये। और वहाँ के भी अनेक महत्वपूर्ण स्थानों में हम लोग गये। वहाँ का नोत्रदाम कैथिड्रल भी हमने देखा। यह कैथिड्रल विश्व-प्रसिद्ध है और वास्तव में स्थापत्य-कला का एक विशिष्ट नमूना है। पेनी को उसी रात ब्रिटेन के लिए रवाना होना था, इसलिए हम दिन भर पेरिस घूमने का आनन्द लेते रहे। सार्वोनियेर से कुछ सैन्डविच तथा मदिरा पेनी ने साथ में रख ली थी, इसलिए वही हमारा दिन-भर का भोजन रहा।

हम लोग 'प्लास डी ला कौंकोर्ड' में घंटों बेंच पर बैठे बैठे बातें करते रहे। उसके बाद सड़क के फुटपाथ पर बने हुए एक छोटे-से कॉफी हाउस में कॉफी पीते रहे। ये 'साइड वॉक-काफी हाउस' पेरिस की अपनी विशेषता हैं। लोग फुटपाथों पर इस तरह के स्थानों में बैठकर कुछ खाने-पीने में बड़ा आनन्द लेते हैं। एक-एक कॉफी हाउस में सैकड़ों लोग फुटपाथ पर बैठकर कॉफी पीते हैं। रंग-रंगीली कुर्सियाँ तथा रंग-रंगीले कपड़ोंवाले छत्र लगे रहते हैं, जिससे कि धूप में ग्राहकों को तकलीफ न उठानी पड़े। ऐसे स्थानों पर बहुत-से स्टैण्ड लगे रहते हैं जहाँ से आप पेरिस अथवा फ्रांस से संबंधित कुछ पिक्चर-पोस्टकार्ड, गाइड बुक आदि भी खरीद सकते हैं। फ्रांस के लोग कॉफी के बड़े शौकीन होते हैं, पर वे दूध या चीनी नहीं मिलाते। केवल कॉफी उबाल कर पीते हैं। पेनी को भी ऐसी ही कॉफी का शौक है। पर मेरे लिए कठिन था। कड़वी कॉफी। फ्रांस में कॉफी का कप भी बड़ा होता है।

पेनी को अपने ब्रिटिश मित्रों के लिए कुछ सामान भी लेना था, इसलिए हम लोग पेरिस के सुप्रसिद्ध डिपार्टमेण्ट स्टोर ले गैलरीज लाफाएट में पहुँचे। यह एक प्रकार से सर्ववस्तु भंडार था। एक बहुत बड़े भवन में शायद करोड़ों रुपये का सामान बेचने के लिए रखा हुआ था। इस दुकान में बेचनेवाले लोगों की संख्या कई-सौ के लगभग होगी। कपड़ा, खाने का सामान, क्रोकरी का सामान, फैशन का सामान, दवाइयाँ, बर्तन, स्टेशनरी, वाद्य-यंत्र, चित्र, खिलौने दुनिया की कौन-सी ऐसी चीज होगी जो इस गैलरीज लाफाएट में प्राप्त न हो सके। पेनी ने अपने मित्रों तथा परिवारवालों के लिए कई चीजें खरीदीं।

सेन नदी के किनारे पर बसे हुए दुनिया के इस खूबसूरत नगर में घूमने का आनंद और पेनी का साथ मेरे लिए स्मरणीय है। हम लोग सेन नदी की शोभा देखते हुए उसके किनारे-किनारे आगे बढ़ने लगे। सामने ही, फ्रांस की औद्योगिक क्रांति का प्रतीक एफेल टावर दीख रहा था। पेनी ने पूछा : "आप इस टावर पर चढ़े या नहीं। "मेरे 'नहीं' कहने पर एफेल टावर के ऊपर चढ़ने का कार्यक्रम बना। हम लोग एफेल टावर के ऊपर चढ़े, तो सारा पेरिस ऐसा मालूम दे रहा था मानो किसी एक बड़ी थाली में बहुत-सी चीजें सजाकर रख दी गयी हों। सड़कों पर चलनेवाली मोटरें छोटे-छोटे खिलौने लग रही थीं। निश्चय ही इस्पात से बना हुआ यह गगनचुम्बी टावर पेरिस का प्रतीक है। नीचे उतरे। फिर सेन नदी का किनारा। किनारे-किनारे पर पुरानी पुस्तकें बेचनेवालों की दुकानें भी कम आकर्षक नहीं थीं। बड़े-बड़े चित्रकारों के चित्रों की मुद्रित प्रतिलिपियाँ, पुरानी पुस्तकें, पिक्चर-पोस्ट-कार्ड इत्यादि चीजों को बेचनेवाले ये अपेक्षाकृत गरीब दूकानदार हमें इशारा कर-करके अपनी ओर बुलाते तथा कुछ ले जाने के लिए आग्रह करते थे।

सारा पेरिस घूम जाने के बाद भी समय समाप्त नहीं हो सका था। पेनी की गाड़ी रात को बहुत देर से थी। इसलिए हम लोगों ने पेरिस के मशहूर नाइट क्लब को देखने की योजना बनायी। पेनी ने वहीं टेलीफोन करके नाइट क्लबों के बारे में कुछ जानकारी हासिल की। पेरिस घूमने का अधिक आनन्द इसलिए आ रहा था कि पेनी को फ्रेंच अच्छी तरह से आती थी और अंग्रेजी तो आती ही थी। यहाँ लोग अंग्रेजी बोलना शान के खिलाफ समझते हैं। फ्रांस के लोगों को कुछ ऐसा संस्कार मिला है कि वे फ्रेंच भाषा के सामने अन्य किसी भी भाषा को कम महत्त्व देते हैं। खैर। हम एक नाइट-क्लब में पहुँचे। हमारे पास से नाइट-क्लब के द्वार पर ही दस-दस फ्रेंक ले लिए गये और कुछ टिकट दिये गये। हमें बताया गया कि नाइट क्लब में जाकर हमें कम-से-कम दस-दस फ्रेंक की कोई चीज तो खानी या पीनी ही पड़ेगी। शार्बोनियेर से लाये हुए भोजन को खा चुकने के बाद हमारा पेट तो भरा था पर फिर भी नाइट क्लब की रंगीनियों को देखने के लिए १० फ्रेंक प्रति व्यक्ति खर्च करना भारी नहीं पड़ा।

नाइट क्लबों के बारे में बहुत कुछ सुन रखा था। मन में आकर्षण भी था। वैसे भी यह पेरिस का नाइट-क्लब अपनी विशेषतावाला होगा, ऐसी कल्पना के साथ हम दोनों नाइट क्लब के बिल्कुल कोने में जाकर एक छोटी-सी टेबल पर, जिसके साथ केवल दो ही कुर्सियाँ थीं, बैठ गये। मंच पर नृत्य चल रहे थे। सोवियत संघ, पोलैण्ड और जर्मनी में मैंने 'बैले' तथा 'ऑपेरा' देखे थे। कुछ लोकनृत्य भी देखे थे। पर यहाँ के नृत्य तो अजीबोगरीब थे। वे हँसानेवाले ज्यादा थे। इन नृत्यों के साथ कला का वास्ता कम और मनोरंजन ज्यादा होता है। जैसे भारत में बम्बइया किस्म की फिल्म में कला की पूछ नहीं, मनोरंजन की ही पूछ रहती है, उसी तरह से यहाँ के नाइट क्लबों के नृत्यों में भी होता है। एक नृत्य समाप्त हुआ और दूसरा

शुरू। यही क्रम लगातार चलता रहा। जब नाइट-क्लब काफी भर गया था और नर्तक-मण्डली भी अपने जोश पर थी तब एक बड़ा विचित्र नृत्य सामने आया। एक तरुणी नर्तकी सभी कपड़ों से लैस होकर मंच पर उपस्थित हुई। उसने नृत्य प्रारम्भ किया। एक चक्र के बाद वह अपने शरीर पर से एक कपड़ा उतार कर फेंक देती थी। यों कपड़े उतार कर फेंकने का क्रम प्रत्येक चक्र के साथ चलता रहा। आखिर में मैंने देखा कि एक छोटी-सी चोली और छोटी-सी कमरलपेट बच गयी थी। इस ड्रेस के साथ उसने कोई तीन-चार मिनट का नृत्य किया। फिर उसने लोगों की तरफ पीठ और दीवार की तरफ मुंह करके इस चोली एवं कमरलपेट को भी उतार दिया। हम थोड़ी दूर बैठे थे, इसलिए ठीक तरह समझ नहीं पाये, पर मेरा ख्याल है कि कमर पर कोई बहुत पतला जो कि नहीं के बराबर था, एक कपड़ा बच गया था। दीवार की तरफ मुंह किये ही उसने एक मिनट हाथों और पैरों के संचालन के साथ नृत्य किया और उसी तरफ मुंह किये हुए स्टेजसे उतरकर चली गयी। इस नृत्य पर लोग काफी तालियां बजा रहे थे और प्रसन्न हो रहे थे। हमने दस-दस फ्रैंक में कुछ खाया-पीया और बाहर आ गये।

पेनी के जाने का समय आ गया था। इसलिए मैं उसे विदा करने के लिए स्टेशन तक गया। उसे रेल में बिठाया और ब्रिटेन में मिलने की आशा व्यक्त करके उससे विदा ली।

पेनी ने अपने घर पहुँचते ही मुझे पत्र लिखा। हम पेरिस में अपने राजदूत श्री अली यवर जंग से मिलने गये थे। दूतावास के पते पर आई हुई पेनी की चिट्ठी मुझे मिली। उसने लिखा: "फ्रांस की मेरी यह यात्रा तुमसे हुए परिचय के कारण और भी अधिक दिलचस्प रही। खासतौर से उस दिन पेरिस घूमने का आनंद तो निराला ही था। जब ब्रिटेन आओ तो मुझसे अवश्य मिलना। लॅस्टर के कॉलेज में

दाखिला ले रही हूँ। वहाँ मुझे रहने के लिए भी अच्छा कमरा मिल गया है। लंदन से लैस्टर बहुत दूर नहीं है। चाहे सुबह आकर शाम को वापस चले जाना; पर आना जरूर।

तुम्हारी,
पैनी कार्बोनेट"

इस बीच हमने पेरिस में अणुशस्त्रों के प्रयोगों के विरुद्ध प्रदर्शन किया। फ्रांस के राष्ट्रपति दिगॉल की कोठी के सामने प्रदर्शन करते हुए गिरफ्तार किये गये। तीन दिन जेल में रहे और वहाँ से देश-निकाला पाकर ब्रिटेन पहुँचे। डोवर से पदयात्रा करके लंदन आये। पैनी ने अपने पत्र में अपने हॉस्टल का टेलीफोन नम्बर भी दिया था, इसलिए मैंने उसको टेलीफोन पर अपने आने की सूचना दी। उसे बहुत आश्चर्य हुआ। वह सोच रही थी कि हम पेरिस से लंदन पहुँचने में महीने दो महीने का समय तो लगा ही देंगे। उसे क्या मालूम था कि हम पेरिस में प्रदर्शन करते हुए गिरफ्तार किए जायेंगे और फ्रांस की सरकार द्वारा २४ घण्टे के अंदर अंदर, फ्रांस से निकाल दिये जायेंगे।

पैनी बोली : "बहुत अच्छा हुआ कि इतनी जल्दी आ गये। लैस्टर आ-जाओ।"

प्रभाकर को लंदन में ही छोड़कर मैं दिन भर के लिए लैस्टर गया। लैस्टर के कॉलिज में काफी विद्यार्थी थे और वहाँ का वातावरण शिक्षा के लिए बड़ा अनुकूल था। चारों ओर छात्र तथा छात्राएँ किताबों के बण्डल उठाये हुए घूम रहे थे। मैंने ब्रिटेन में सबसे पहला कोई कॉलिज देखा तो वह यही था। पैनी मिली। वह मुझे भोजन कराने के लिए एक भारतीय रेस्तराँ में ले गयी। बोली : "तुम्हें

हिंदुस्तानी खाना खाये बहुत दिन हो गये होंगे, इसलिए चलो आज अपने मन का खाना खाओ।" इग्लैण्ड में हिन्दुस्तानी रेस्तराँ लगभग प्रत्येक नगर में मिल जायेंगे। लंदन में तो हिन्दुस्तानी रेस्तराँ की भार-मार है।

वास्तव में बहुत दिन के बाद हिन्दुस्तानी खाना मिला था। चावल और दाल। चपातियाँ और सब्जियाँ। पापड़ और अचार।

हमने अपने खाने का स्वाद बदल ही लिया था। शाकाहारी पूरी तरह बने रहे। कहीं भी माँस नहीं खाया। डबल रोटी, दूध, मक्खन, पनीर आदि से ही संतोष करते थे। फ्रांस में तो दो सौ प्रकार से भी ज्यादा तरह के पनीर होते हैं। फिर फल काफी मात्रा में मिल जाते थे। शुरू-शुरू मे तो इस तरह का खाना बड़ा बेस्वाद लगता था, पर धीरे-धीरे आदत डालनी ही पड़ी। आखिर एक दिन का काम तो था नहीं। जिन्हें सालों यात्रा करनी हो, उन्हें खाने-पीने की आदतें तो बदलनी ही पड़ती हैं। यह बात मैंने पेनी को समझायी। उसने मेरे साथ सहमति प्रकट की।

खाना खाने के बाद हम लोग लॅस्टर शहर में घूमते रहे। खूब चक्कर काटे। दोपहर बाद पेनी मुझे एक 'पब' में ले गयी। पब्लिक बार को संक्षेप में 'पब' कहते हैं। इन पबों में बियर, मदिरा आदि पी जाती है, इसलिए इन पबों को मदिरालय कहा जा सकता है। उसके बाद हम लोगों ने एक मनोरजक अंग्रेजी फि[illegible] कार्यक्रम बनाया। फिलम का नाम था—जान टॉम। [illegible] के ब्रिटिश [illegible] के जीवन पर आधारित यह [illegible] दिलच[illegible] ली, साथ ही ज्ञानवर्धक भी [illegible] के बा[illegible] पार्क में एक बेंच पर [illegible] [illegible]ौन-सी चीज सबसे [illegible]

पेनी कुछ देर सोचती रही। फिर बोली : "मुझे भारत की ज्यादा चीजों के बारे में तो ज्ञान नहीं है, पर जितना देखा है उतने में मुझे भारतीय स्त्रियों की साड़ी बहुत पसंद है।" मैंने पूछा : "क्या आप भी साड़ी पहनना पसंद करेंगी ?" उसने कहा : "ओह ! मुझे साड़ी बेहद पसंद है। पर कहाँ मिलेगी, कैसे मिलेगी ?" मैंने कहा : "ठीक है, कुछ दिन प्रतीक्षा करो, तुम्हें साड़ी मिल जायेगी।"

मैंने भारत के एक मित्र को वाराणसी लिखा कि वे एक साड़ी मेरी ओर से पेनी को भेंट में भेज दें। वह भेज दी गयी। हमारे लंदन रहते-रहते ही वह साड़ी पेनी को मिल भी गयी। इसलिए पेनी का एक दिन मुझे टेलीफोन मिला। "बहुत सुंदर साड़ी है। मेरे जिस-जिस मित्र ने इसे देखा, पसंद किया। तुम्हें हजार-हजार धन्य-वाद। मैंने साड़ी को किसी तरह अपने शरीर पर लपेटा, परन्तु यह साड़ी कैसे पहनी जाती है, यह समझ में नहीं आया। इसलिए तुम जल्दी चले आओ। एक तो लंदन से जाने के पहले, मुझसे तुम्हारा मिलना भी हो जायेगा ; दूसरे मे साड़ी पहनना भी सिखा देना और तीसरे में मैं साड़ी पहनकर कैसी लगती हूँ यह तुम देखकर मुझे बताओ।"

पेनी क स्वर में बहुत उतावलापन और कम्पन था। मैंने उसका कहा तो माना, लेकिन जिस दिन उसका फोन मिला उसके दूसरे दिन ही मुझे और प्रभाकर को यॉर्कशायर जाना था। वहाँ हमारे भाषण का कार्यक्रम था। लोग प्रतीक्षा कर रहे थे। क्या करें।

लेंस्टर और यॉर्कशायर में किसी एक को चुनना पड़ेगा। मैंने प्रभाकर से कहा : "तुम यहाँ से सीधे यॉर्कशायर जाओ और मैं लेंस्टर होते हुए शाम तक यॉर्कशायर पहुँच जाऊँगा।" प्रभाकर मान गये। मैं लेंस्टर पहुँचा।

पेनी भारतीय साड़ी में निहायत खूबसूरत प्रतीत हो रही थी। मैंने उसे साड़ी पहनने का तरीका सिखाया। उसके होस्टल में रहनेवाली सभी छात्राएँ मुझे और पेनी को घेरे हुए थीं। ऐसा लगता था जैसे हम दोनों नुमाइश बन गये हों। कुछ को ऐसा भी शक हुआ कि क्या पेनी सतीश के साथ ही जा रही है ? खैर ! साड़ी-पुराण समाप्त हुआ। मुझे यॉर्कशायर जाना था। पेनी बोली: "शाम को आखिरी गाड़ी मिलेगी उससे चले जाना। दिन भर यहीं रहो।" साड़ी पहनकर पेनी मेरे साथ हो ली। हम लोग फिर दिन भर घूमते-घामते रहे। कहीं कॉफी पी, कहीं किसी 'पब' की हवा खायी और इस तरह शाम हो गयी। पेनी ने इतना उलझा लिया कि यॉर्कशायर का कार्यक्रम रद्द ही हो गया। मैं रात भर पेनी के साथ ही रहा। उसके पास अपना स्वतंत्र कमरा था।

दूसरे दिन लंदन लौट आया।

इंगलैंड

बर्टेंड रसेल

जब से मैंने किताबें पढ़ना शुरू किया, बर्ट्रैण्ड रसेल की किताबें मुझे खास तौर से आकर्षित करती रहीं। नोबल-पुरस्कार विजेता बर्टी ने (उनके निकट के साथी उन्हें प्यार से बर्टी पुकारते हैं) न केवल गणित शास्त्र तक ही अपने को सीमित रखा, बल्कि वे एक समाज-शास्त्री और दार्शनिक के रूप में भी लम्बे समय तक अमेरिका में पढ़ाते रहे। प्रेम, काम, विवाह, युद्ध, राजनीति के बारे में उन्होंने मौलिक विचार रखे और मैं इन विचारों से एक नया चिन्तन प्राप्त करता रहा। अमेरिका में उनके काम, विवाह और प्रेम संबंधी भाषणों पर प्रतिबंध लगा दिया गया था और आखिर संयुक्तराज्य अमेरिका से उन्हें बाहर निकल आना पड़ा।

जब पिछले वर्षों में उन्होंने अपना सारा समय अणु-अस्त्र-विरोधी आन्दोलन के पीछे लगाया, तब से संसार भर के शांति-प्रेमियों में आशा की एक नयी लहर दौड़ आयी। हममें से बहुत से कार्यकर्ताओं ने यह

जैसा है। दूसरे देशों की फौजी सहायता पर कब तक निर्भर रहा जा सकता है? इन सैनिक तैयारियों से छोटे-छोटे पड़ोसी देशों में भी भय पैदा होगा।" इस तरह रसेल ने चीन-समस्या के हल के लिए दलीलें पेश कीं।

"आप की बात तो ठीक है। पर क्या आप चाहते हैं कि भारत चीन के सामने आत्मसमर्पण कर दे?" मैंने झुंझलाकर पूछा। "नहीं!"—बर्टी बोले: "आत्म-समर्पण भी नहीं और युद्ध भी नहीं। कोई तीसरा रास्ता हमें ढूंढना होगा। कोलम्बो प्रस्तावों से तीसरा रास्ता खुलने की आशा थी। चीन को कोलम्बो प्रस्ताव मान्य करना चाहिए। पर उसने ऐसा करने से इनकार किया है। इसलिए एक बड़ा गत्यवरोध पैदा हुआ है। यह गत्यवरोध ज्यों-ज्यों लम्बा होगा, त्यों-त्यों सैनिक तैयारियां बढ़ेंगी और परिस्थितियां उलझेंगी। इस दुर्भाग्य-पूर्ण गत्यवरोध को समाप्त करने के लिए भारतीय शान्ति-आन्दोलन के नेता विनोबाजी, जयप्रकाशजी, आर. आर. दिवाकर जैसे लोग गंभीरता-पूर्वक सोचकर और परिस्थिति की जटिलता को समझकर कोई मार्ग निकालें।"

भारत-चीन-समस्या की चर्चा के बीच ही प्रश्न आया, आणविक शस्त्रास्त्रों का। पूरी-की-पूरी इन्सानी तहजीब के ही मिट जाने का खतरा अणु-शस्त्रों ने पैदा किया है। इस खतरे के डर से बर्टी भय-भीत हैं। बर्टी के प्रति पूरी नम्रता और आदर के बावजूद मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि उनका चिन्तन भय पर आधारित है, अहिंसा पर नहीं। ९० मिनट की बातचीत के बाद मैंने अपने-आपको बड़ी अजीब हालत में पाया। उनके सामने किसी अहिंसात्मक समाज का स्पष्ट चित्र है, जैसा कि गांधीजी के सामने था, ऐसा मुझे नहीं लगा। उनके मन में मानव-सभ्यता के ही मिट जाने का भय है, और इसलिए वे अणु-शस्त्रों का विरोध करते हैं।" पर इस भय के

कारण यदि हम आणविक निःशस्त्रीकरण प्राप्त भी कर लें, तो भी क्या संसार में शान्ति स्थापित हो सकेगी ? पहले और दूसरे महायुद्ध के समय आज जैसे भयकर और विनाशकारी हथियार नही थे, फिर भी क्या हम युद्ध को टाल सके ? क्या घिनौनी हिंसा का शिकार होने से समाज को बचा सके ? जब तक सारा राजनैतिक ढाँचा अविश्वास, सेना और शस्त्रों के बल पर टिका रहेगा, तब तक मात्र आणविक निःशस्त्रीकरण कहाँ तक सहायक होगा, यह समझने में मैं असफल रहा हूँ।"

बर्टी ने मेरे इस कथन पर दुर्घटनात्मक आणविक युद्ध की संभावना की ओर भी ध्यान खींचा। "पर समाज की बुनियादों में जब तक हिंसा के स्थान पर अहिंसा के पत्थर नही रखे जायेंगे, तब तक आणविक निःशस्त्रीकरण की बात ऊपर से पत्ते काट लेने, लेकिन जड़ को वैसे ही छोड़ देने जैसी बात है। अगर रूस और अमेरिका आणविक शस्त्रों के विसर्जन की बात मान लें तो दुनिया की सत्तामूलक राजनीति मे उसी का वर्चस्व रहेगा, जिसके पास सबसे बड़ी सेना हो। उसमें शायद चीन का नम्बर पहला होगा।

"इसलिए हमें सारे संसार से और सभी राजनीतिज्ञों से यह अपील करनी होगी कि वे समस्याओं के समाधान के लिए हिंसक-शक्ति और सेना का शास्त्र समाप्त करके अहिंसा का शास्त्र स्वीकार करें तथा संपूर्ण समाज की रचना अहिंसात्मक नीतियों के आधार पर खड़ी करें, जैसा कि गांधीजी ने आज़ादी प्राप्त करने के लिए माना था। हमें दिल्ली से मॉस्को और वाशिंगटन तक की पदयात्रा में अनेक राजनेताओं ने कहा कि 'हम शान्ति चाहते हैं। युद्ध नहीं चाहते। पर अपनी आज़ादी की रक्षा के लिए हम सेना का सहारा लेने के लिए बाध्य हैं।' यदि आप इन नेताओं को एकतरफा निःशस्त्रीकरण की सलाह

फ़ैज़ अहमद फ़ैज़

अब भी दिलकश है तेरा हुस्न मगर क्या कहिए,
और भी दुःख हैं जमाने में मुहब्बत के सिवा,
राहतें और भी हैं, वस्ल की राहत के सिवा
मुझसे पहली-सी मुहब्बत मेरी महबूब न मांग।

बताने की जरूरत नहीं कि ये पंक्तियाँ किस की हैं। ऐसी ही अनेक-अनेक नयी जिन्दगी और नयी प्रेरणा का अबाध स्रोत बहानेवाली कविताओं के रचयिता तथा साहित्यकार श्री फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ से मिलने की उत्कंठा से हम पाकिस्तान पहुँचे। लाहौर में तीन चार स्थानों पर टेलीफोन करके यह पता लगाने की कोशिश की थी कि वे कहाँ रहते हैं ? वह जुलाई १९६२ का महीना था। चारों तरफ लू चल रही थी।

मैंने जब खोज-खबर की तो मालूम हुआ कि फ़ैज़ साहब आजकल पाकिस्तान में नहीं हैं। लेकिन इस बात का पता लगाने के लिए मुझे काफ़ी परेशानी उठानी पड़ी, क्योंकि वे पाकिस्तान की सरकार के कोपभाजन रहे हैं। इसलिए आम लोग उनका पता आसानी से बताने में झिझक रहे थे। खास तौर से हम जैसे हिन्दुस्तान से आये हुए यात्रियों को फ़ैज़ साहब के बारे में जानकारी देना खतरनाक हो सकता है ऐसा लोगों का खयाल था। जब लाहौर में उनके न होने की बात का पता लगा तब मुझे एक तरह से निराश ही हो जाना पड़ा। मैं एक अरसे से ऐसा सपना सजोये हुए था कि पाकिस्तान जाने पर

से जरूर मिलूंगा। हमारी पाकिस्तान की यात्रा पूरी हो गयी और यों बात आयी-गयी हुई।

पाकिस्तान से अनेक देशों की यात्रा के बाद हम ग्रेट-ब्रिटेन पहुँचे। यहाँ पहुँचने के बाद मशहूर राष्ट्रीय अखबार 'दी गार्जियन' ने हमारी पैदल-यात्रा की साहसिक कहानी पर एक लम्बा लेख लिखा था और हमारा फ़ोटो भी प्रकाशित किया था। इस अखबार में पढ़कर बी० बी० सी० रेडियोवालों ने हमें आमंत्रित किया तथा अपनी यात्रा की कहानी हमने बी०बी०सी० से प्रसारित की।

मैं ३० अक्तूबर १९६३ के दिन की यह कहानी लिख रहा हूँ। उस दिन बी० बी० सी० के रेडियो-स्टेशन पर मैं अपनी यात्रा की कहानी रिकार्ड कराने के लिए गया हुआ था। बरसात और सर्दी से मिले-जुले मौसम के कारण कुछ अजीब परेशानी-सी महसूस हो रही थी। मैंने रिकार्डिंग-रूम में आधे घंटे के रिहर्सल के बाद १० मिनट में अपनी वार्ता रिकार्ड करायी। रिकार्डिंग करनेवाली महिला ने हमारी थकान और परेशानी को समझकर सहानुभूति प्रकट करते हुए मुझसे कहा :

"क्या आप एक कप कॉफी पसन्द करेगें ?" मानो मेरे मन की बात उस ने कह दी हो। मैंने तुरन्त ही हाँ भर दी। हम दोनों बी० बी० सी० भवन की निचली मंजिल में स्थित रेस्तराँ में पहुँचे।

मुझे इस बात का कतई अन्दाज़ा नहीं था कि इस जगह मेरे प्रिय शायर श्री फ़ैजसाहब से मुलाकात होनेवाली है। मैं और मेरी मेज़बान महिला काफी तथा सैंडविच लेने के लिए बुफ़े की लाइन में खड़े हो गये। इस तरह के रेंस्तराँ में सेल्फ-सर्विस चलती है। हमने तश्तरी प्लेट, कप और चाकू उठाये, शेल्फ में रखे हुए सैंडविच लिए काफी-टेंक की टोंटी खोलकर कप को भर लिया। रेस्तराँ की व्यवस्थापिका

महिला ने हमारी ट्रे का सामान देखकर बिल बनाया और हम आगे बढ़े कि हमारी नजर एक गोल तथा आकर्षक चेहरेवाले व्यक्ति पर पड़ी।

मेरे साथ जो महिला थी उसने कहा : "क्या आप पाकिस्तान के मशहूर शायर फ़ैजसाहब को जानते हैं ?" मैं एकदम अचकचा गया। मैंने कहा मैं उन्हें शायरी के माध्यम से जानता हूँ; लेकिन कभी साक्षात् नहीं हुआ। इस पर उस मेजबान अंग्रेज तरुणी ने मुझसे कहा : "चलिए मैं आपको उनसे मिलाऊँ। वे अक्सर हमारे स्टूडियो में आया करते हैं। देखिये, वे सामने हैं। उनके साथ बैठकर कॉफी पीने का आनन्द भी दुगुना हो जायेगा। साथ ही एक पाकिस्तानी और एक हिन्दुस्तानी को एक ही टेबल पर लाने में मुझे खुशी होगी।"

निश्चय ही तरुणी के अंतिम वाक्य में व्यंग्य छिपा हुआ था। पर मैंने उस व्यंग्य की तरफ ध्यान नहीं दिया। फैजसाहब से मिलने की खुशी के मारे मैं कुछ सोच नहीं पाया और तुरन्त ही मैंने कहा : "यह तो बहुत अच्छी बात है, चलिए।"

और, हम चल पड़े फैजसाहब से मिलने। अकस्मात् मुझे उनका एक शेर याद आ गया, जिसकी अनगायी गूँज मेरे खयालों में घूम गयी। मेरे सामने फ़ैजसाहब की जिन्दगी का एक-एक धुंधला वरक खुद-ब-खुद खुलने लगा। वह शेर है :

संजर-ऐ तल्खीए सितम हमको गवारा
दम है तो मुदावाए अलम करते रहेंगे।

जब हम फैजसाहब की टेबल पर पहुँचे तो वे अपने एक पाकिस्तानी मित्र से बातचीत करने में तल्लीन थे। उनके हाथ सिगरेट थामे हुए थीं और सामने के एश-ट्रे में सिगरेट हो रही थी।

पहुँचते ही [illegible] साथवाली महिला ने कहा : "क्या हम आपके पास बैठकर [illegible] की [illegible] मालूम कर सकते हैं ?"

'जरूर।' फ़ैज़साहब ने कहा। हमने सामने की खाली कुर्सियों पर [illegible] जमाया। मैंने फ़ैज़साहब से बातचीत शुरू करते हुए कहा : 'फ़ैज़साहब, आज मैं आपकी मुलाकात एक बहुत ही दिल-चस्प हिन्दुस्तानी [illegible] से कराना चाहती हूँ, जो हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बीच दोस्ती तथा शांति कायम रखने की वकालत करते हैं। ये मुल्क [illegible] के [illegible] शांति का प्रचार करते हुए दिल्ली से पैदल लन्दन तक पहुँचे हैं।

"ओह, इनके बारे में तो मैं 'दी गार्जियन' में पढ़ चुका हूँ।" ऐसा कहते हुए फ़ैज़साहब खड़े हो गये और उन्होंने मिलाने के लिए अपना हाथ मेरी ओर बढ़ाया। मैंने भी खड़े होकर उनका भी अभिवादन किया। हम दोनों फिर से अपने आसनों पर जम गये। समझ में नहीं आ रहा था कि मैं अपनी बातचीत कहाँ से प्रारंभ करूँ। उनको पहले अपनी यात्रा की कहानी सुनाऊँ या भारत और पाकिस्तान के बीच की समस्याएँ हल करने का क्या तरीका हो सकता है इस बारे में कुछ पूछूँ या उनकी शायरी पर कुछ सवाल करूँ ? या साहित्य में प्रगति-वादी का क्या स्थान है इस पहलू पर उनके विचार जानूँ। मैं अपने से बाहर निकलूँ कि मेरे साथवाली अंग्रेज युवती ने ही हमारी बातचीत का सिलसिला शुरू कर दिया, हालाँ कि वह ज्यादा देर तक चला नहीं।

तरुणी ने कहा : "हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के आपसी मसले किस तरह हल हो सकेंगें ?" मैं इस सवाल का कोई उत्तर देना नहीं चाहता था। मुझे उस महिला के सवाल में जिस व्यंग्य के दर्शन हो रहे थे उसमें उलझना व्यर्थ था; परन्तु फ़ैजसाहब ने उस तरुणी को समझाते हुए कहा :

"हिन्दुस्तान श्रौर पाकिस्तान का मसला बहुत ही ... ढंग से खड़ा किया गया है। उसके पीछे सियासी खुदगरजी ज्यादा ... इसलिए उनको सुलझाने में दिक्कत पैदा हो रही है। श्रगर ... सियासत के नजरिए श्रलग रखकर हम सोचें तो दोनो मुल्को के बीच की समस्याएं बड़ी श्रासान दिखायी देंगी।

मैंने फैजसाहब की इस बात पर श्रपनी रजामन्दी जाहिर की। यह सिलसिला समाप्त करके मैंने फैजसाहब से पूछा :

"१६३६ मे श्रापने साहित्य मे एक नये श्रान्दोलन की बुनियाद डाली थी। क्या श्राप मुझे उस संबंध में कुछ बता सकेंगे ?"

सिगरेट का एक गहरा कश खींचते हुए श्री फैजसाहब ने कहा : "बिना मकसद के लिखे हुए साहित्य को मैं ज्यादा श्रहमियत नहीं देता। श्रगर साहित्य के पीछे कोई ऊँची तहरीक न हो या कोई एक मखसूस नजरिया न हो तो वह साहित्य पढ़नेवालों का दिल-बहलाव करने के एक मामूली दायरे से श्रागे नही बढ़ सकता। १६३६ मे भी, उसके बाद भी श्रौर श्राज भी मेरे यही खयाल हैं। मेरे इन्हीं खयालो की परछाईं १६३६ के श्ररबी तहरीक मे थी।"

फ़ैजसाहब के इन विचारों ने मेरे दिमाग में कुछ खलबली पैदा की। मैंने उनसे पूछा : "श्राप जिस श्रादर्श की बात करते हैं वह श्रादर्श कहीं सीमित घरो में बँध जाये तो उसकी क्या हालत होगी। मेरा मतलब संकुचित सियासी घेरों से है।"

मेरी उलझन को ठीक तरह से समझते हुए वे बोले : "सियासत से घबराने की या उससे नफरत करने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि श्राज कौमी तथा बेनुलकौमी जिन्दगी में सियासत दूध में चीनी की तरह घुलमिल गयी है। मगर यह महदूद खुदगर्जों से भरी सियासत नहीं होनी चाहिए, बल्कि मुकम्मिल इन्सानियत की तरक्की की सियासत होनी चाहिए। हुकूमत हासिल करने के मक़सद से चलनेवाला मुक़ाबला

कुमारी आलीसन विल्सन

हम लन्दन में ४५ दिन रहे। 'अर्ल्स-कोर्ट' के पास ४१, कोर्ट फील्ड रोड हमारा लन्दन-निवास था। एक एकाकी वृद्धा, पेगी स्मिथ का यह मकान। मेडम स्मिथ अकेली ही थीं। उनके इस तीन मंजिल वाले मकान में १०–१५ विद्यार्थी किराये पर रहते थे। उनके मकान में एक बड़ा हॉल खाली पड़ा था। क्योंकि मेडम स्मिथ एक क्वेकर-महिला हैं और बड़ी निष्ठावाली पैसीफिस्ट हैं इसलिए लन्दन के शांतिवादियों ने उनसे यह निवेदन किया कि हम शांतियात्रियों को बिना किराया लिए, वे अपने मकान में ठहरने दें। मेडम स्मिथ के लिए तो यह बड़ी प्रसन्नता की बात थी। हम उनके घर पर ठहर गये।

मेडम स्मिथ का घर लन्दन के शांतिवादी आन्दोलन-कारियों का गढ़ था। उनके पास प्रतिदिन कितने ही युवक-युवतियों के दर्शन हमें हुआ करते थे। उनमें कोई अनार्किस्ट यानी अराज्यवादी होता, तो कोई रंग-भेद-विरोधी आन्दोलन का कार्यकर्ता होता तो कोई एटम-बम विरोधी समिति का सदस्य। इस तरह के लोगों से हमारा संपर्क बराबर आता रहा।

एक दिन मेडम स्मिथ के घर एक शांतिवादी कार्यकर्ता के विवाह का आयोजन था। प्रभाकर को कुछ चिट्ठियाँ आदि टाइप करने जाना था। इसलिए उसने मुझसे कहा : "तुम्हें इस विवाह-निमंत्रण में उपस्थित रहना चाहिए। अगर हम दोनों ही अनुपस्थित रहेंगे तो मेडम पेगी को बुरा लगेगा।" मैंने स्वीकार किया और विवाह के कार्यक्रम में शामिल हुआ। यहीं पर लन्दन विश्वविद्यलय की एक आकर्षक छात्रा

कुमारी आलीमन विल्सन से मेरी मुलाकात हुई, जिसे बाद में मैंने सदैव "आली" कहकर ही पुकारा। "हिन्दी में आली शब्द का अर्थ होता है सहेली और उर्दू में श्रेष्ठ। ऐसा जब मैंने उसे बताया तो वह संकोच के साथ कुछ सकुचा-सी गयी और उसने अपने आपको गौरवान्वित महसूस किया। लड़कियों को यदि आप कुछ कॉम्प्लीमेन्ट दे डालें तो वे एकदम खिल उठती हैं; खासतौर से उनका सौन्दर्य सराहे जाने पर।

विवाह-विधि सम्पन्न हुई। आली ठीक मेरे साथ ही सोफे पर बैठी थी। इसलिए ब्रिटानी विवाह-पद्धति की बारीकियाँ वह मुझे समझाती गयी। उसने कहा : "लेकिन यह विवाह ब्रिटानी पद्धति का नमूना नहीं माना जा सकता। ये दोनों ही धार्मिक क्रियाओं में विश्वास नहीं करते। कोर्ट में रजिस्ट्रेशन और मित्रों के साथ पार्टी। इतने मात्र से यह विवाह हुआ है।" इतने में जलती हुई मोमबत्तियों के बीच रखा हुआ केक काटकर सबको दिया गया। साथ में ही मदिरा के भरे हुए प्याले भी। सबने नव विवाहित युगल के सुखी दाम्पत्य की कामना—टोस्ट की घोषणा की। प्यालों को आपस में टकराकर मदिरा पी गयी। आली ने अपने चश्मे के पीछेवाली बड़ी बड़ी आँखों से मुझे झाँकते हुए कहा : "दिस वाइन हैज ए वंडरफुल टेस्ट।" और तब मैंने आली की तरफ इशारा करते हुए चुटकी ली : "दिस वाइन टू हैज ए वंडरफुल टेस्ट। वाइन एण्ड वोमेन आर दि सेम।" आली ने मेरी इस चुटकी को भी कॉम्प्लीमेन्ट ही समझा और उसके बदले में कहा : "थैंक्यू।"

विवाह समारोह में आये हुए लोग अलग-अलग दलों में बिना बाँटे ही बँट गये और गपशप करने लगे। दंपति युगल को भी उनके कुछ विशिष्ट मित्रों ने घेर रखा था। मैं तो पूरे समारोह में केवल दो व्यक्तियों को जानता था। एक, मेडम स्मिथ, जिनका मैं मेहमान था और दूसरी आली, जिसके साथ सोफे पर बैठा मदिरा और केक का स्वाद चख

रहा था। इसलिए जब सब लोग अपनी-अपनी गप-शप में मशगूल थे मैं और आली भी तरह-तरह की बातें करने का प्रयत्न कर रहे थे। हम दोनों ही बातचीत के लिए विषय ढूंढ़ रहे थे। पर पता नहीं सब विषय उस दिन क्यों समाप्त हो गये थे।

"बाहर मौसम बड़ा ठंडा है।" आली ने कहा।

"वर्षा भी हो रही है।" मैंने कहा।

फिर चुप्पी। यह भी तो संभव नहीं था कि हम एक दूसरे को छोड़कर कहीं चल दें। इतने में हमारे प्याले खाली होने जा रहे थे। आली बोली : "चलिए थोड़ी-थोड़ी और लें।" हमने वैसा ही किया। इसी बीच हमारी बातचीत को भी एक नया मोड़ मिल गया। आली बताने लगी नव-विवाहित दंपति की प्रेम-कहानी : "ये दोनों पिछले लंबे समय से अणुशस्त्र-विरोधी सभा में साथ-साथ काम करते रहे हैं और इसी बीच एक दूसरे से प्यार करने लगे। दोनों काम करते हैं। आर्थिक दृष्टि से दोनों स्वावलंबी हैं।"

मैंने पूछा : "आप लोगों के विवाह में माता-पिता का क्या हिस्सा होता है?"

आली ने बताया : "एक दृष्टि से लगभग कुछ नहीं। । २१ वर्ष के हो जाने के बाद हम अपने जीवन का हर निर्णय स्वयं करते हैं और माता-पिता उसमें कोई दखल नहीं देते। मैं सुनती हूं कि भारत में तो अधिकांश विवाहों का प्रबन्ध माता-पिता ही करते हैं?" आली ने पूछा।

"हाँ, यह ठीक है।"

"लेकिन यह तो बहुत विचित्र है। किसी के प्रेम और विवाह का मामला माता-पिता द्वारा कैसे तय किया जा सकता है?"

"आपके यहाँ प्रेम हो जाने के बाद विवाह होता है और भारत में विवाह हो जाने के बाद प्रेम किया जाता है।" मैंने बताया।

आली ने कहा : "हमारे यहाँ तो लड़कियाँ हाई-स्कूल पास करने के साथ अपना स्वतत्र जीवन व्यतीत करने लगती हैं। वे घर पर नहीं, हॉस्टल में रहती हैं। वे अपनी पढाई के लिए खुद कमाने की भी कोशिश करती हैं। मैंने पिछले वर्ष क्रिसमस की छुट्टियों में पोस्ट आफिस मे अस्थायी नौकरी कर ली थी और उससे मुझे इतने पैसे मिले कि मेरी पढाई का अधिकांश खर्च स्वयं दे सकती थी। इसके अलावा मैं कभी-कभी 'बेबी-सिटिंग' का काम करके भी कुछ कमा लेती हूँ।

"बेबी-सिटिंग से क्या मतलब ?" मैंने पूछा।

"जब कोई माता-पिता किसी सभा में बाहर जाना चाहते हों, वे सिनेमा, थियेटर या कहीं मिलने जा रहे हो तो वे अपने बच्चों की देख-भाल के लिए किसी छात्रा को अपने घर छोड़ जाते हैं। मैं ऐसे कई माता-पिता को जानती हूँ जिन्हें अवसर इस तरह बाहर जाने की जरूरत पड़ती है। मैं अपनी पढ़ाई की किताबें साथ ले लेती हूँ। बच्चे खेलते रहते हैं। मैं पढ़ती रहती हूँ। उनके खाने-पीने का समय होने पर मैं उन्हें खाना दे देती हूँ।"

मुझे इस 'बेबी-सिटिंग' के काम की बात सुनकर बड़ा अचरज हुआ।

इसी तरह की वार्ता मे विवाह-समारोह संपन्न हुआ। यह समारोह सुबह लगभग नौ बजे प्रारम्भ हुआ था और दस बजे तक चला। बहुत संक्षिप्त और सादा समारोह था।

"आज दिन भर आप क्या कर रहे हैं ?" आली ने पूछा।

"कुछ भी नही। कोई पूर्व निश्चित कार्यक्रम नही है। मेरे साथी तो कुछ काम से इण्डिया-हाउस गये हैं। मैं दिन-भर यहीं हूँ।" मैंने बताया।

"क्या आपने लन्दन ठीक तरह देखा है ?"

"सवाल तो बड़ा अच्छा है। पर बदकिस्मती से न तो अबतक हमें ऐसा कोई साथी ही मिला, जो लन्दन घुमाता और न समय ही मिल पाया। मैं यही सोचता रहा हूँ कि लन्दन से रवाना होने के पहले कभी देख ही लेंगे।"

"कभी के भरोसे तो आप यों ही रह जायेंगे। चलिए आज मेरा भी छुट्टी का दिन है। आपको लन्दन भी घुमाऊँगी और इस बहाने आपके साथ कुछ और भी बातें होंगी। फिर साथ ही खाना खायेंगे। किसी भारतीय रेस्तराँ में। आपके निमित्त से मैं भी भारतीय भोजन का स्वाद चखूँगी।" यों आली ने लगभग पूरे दिन का कार्यक्रम बना डाला। मैं उसी समय तैयार हो गया। वैसे अंग्रेज लोग कुछ रिज़र्व प्रकृति के होते हैं। लेकिन आली के साथ मुझे ऐसा नहीं लग रहा था। यह बड़ी खुली तबियतवाली तरुणी थी।

मैंने फरोंवाला अपना रूसी ओवरकोट पहना और हम निकल पड़े। लन्दन देखना हमारा उद्देश्य था। आली स्वयं अपनी कार चला रही थी। कहने लगी : "बड़े सस्ते में यह कार मुझेमिल गयी। सेकेंड-हैंड कार। केवल ५० पाउंड में। मेरे एक मित्र सेकेंड-हैंड कारों का व्यापार करते हैं। इस कार के मालिक अमेरिका जा रहे थे। वे मेरे व्यापारी मित्र को दे गये ५० पाउंड में ही। मित्र ने मुझे उसी दाम में दे दिया।" और यों हम फुलहाम रोड से केन सिंगटन रोड होते हुए केनसिंगटन गार्डन्स पहुँचे। केनसिंगटन गार्डन्स और हाइड पार्क को मिलाकर हम देखें तो यह लन्दन का शायद सबसे बड़ा बगीचा है। ये दोनों बगीचे वैसे तो एक ही हैं पर बीच में रिंग सरपेंटिन रोड है जो इन दोनों को अलग-अलग कर देती है।

"हाइड पार्क ब्रिटेन के विचार-स्वातंत्र्य का प्रतीक है। यहाँ रविवार के दिन कोई भी वक्ता किसी भी विषय पर अपने विचार प्रस्तुत करने के लिए स्वतंत्र है और लन्दनवासी इस बात को जानते

हैं, अतः रविवार के दिन यहाँ प्रायः भीड़ रहती है।" भाली ने हाइड-पार्क की तरफ इशारा करने के लिए एक हाथ स्टैयरिंग पर से हटाते हुए कहा, और मार्बल-आर्क की ओर मेरा ध्यान मोड़ा। लन्दन का यह विशिष्ट मान्यूमेन्ट है। कार को रोकने के लिए कहीं जगह नहीं थी। आली ने कहा : "पार्किंग स्पेश लन्दन की सबसे बड़ी समस्या है। अगर कार खड़ी करने की जगह होती तो मैं आपको मार्बल आर्क के पास ले चलती।" और तब हम लन्दन की मशहूर ऑक्सफ़ोर्ड स्ट्रीट पर पहुँच गये। "यह लन्दन का सर्वश्रेष्ठ बाजार—शॉपिंग-सेंटर" है मैंने कहा. "जैसे नयी दिल्ली में कनाट-प्लेस।" आली बोली : "हाँ, बस कनाट प्लेस। मैंने कनाट-प्लेस के बारे में पढ़ा है। चित्र भी देखे हैं। चित्रों में तो कनाट-प्लेस ऑक्सफोर्ड स्ट्रीट से अधिक खूबसूरत दीखता है।"

"अब चलो मैं तुम्हें अपना विश्व-विद्यालय दिखाऊँ।" टोटनहाम रोड पर कार को घुमाते हुए आली ने कहा। विश्व-विद्यालय पहुँचकर कार एक तरफ खड़ी कर दी गयी। कार तो एयर कंडी-शंड थी। निकलते ही सर्दी ने हम पर हमला किया। बाहर निकल, हमने एक दूसरे का हाथ पकड़ा और भागकर विश्व-विद्यालय भवन में पहुँचे।" हमें अपने विश्व-विद्यालय पर गर्व है।" भवन में पहुँचते ही आली ने कहा : "केवल इमारतें ही नहीं, यहाँ का वातावरण, यहाँ के अध्यापक, यहाँ के विद्यार्थी, एक शब्द में यहाँ की 'फिज़ा पर मुझे गर्व है।' फिर वह मुझे सिनेट-हाउस ले गयी, जो लन्दन में स्थापत्यकला की दृष्टि से अपने ढंग की शायद अकेली इमारत है। उसके बाद नम्बर आया ब्रिटिश म्यूजियम का। विश्व-विद्यालय के एकदम निकट ही म्यूजियम-भवन है। आली के शब्दों में जिसे देखने के लिए और जहाँ पर संदर्भ तथा शोध के लिए विश्व भर के लोग पहुँचते हैं।

"यहाँ है छपी हुई पुस्तकों का संग्रह।"

"और यहाँ है हस्तलिखित पांडुलिपियाँ।"

"और यह है चित्रों व चित्रकारों का विभाग।"

"और यह है पुराने सिक्कों, का अनुपम संग्रह।"

"और ये हैं ग्रीस, मिस्र भारत, जापान आदि देशों से संबंधित सामग्रियाँ।"

इस प्रकार मैं घंटे भर तक ब्रिटिश म्यूज़ियम में खोया-खोया रहा। समय कम था, बहुत कम। म्यूज़ियम में कई दिनों तक खो जाने की इच्छा हो रही थी। पर आली मुझे एक ही दिन में सारा लन्दन दिखा देना चाहती थी।

"अखबार-संसार : फ्लीट स्ट्रीट।"

"देखो, पार्लियामेन्ट, हाउस।"

"बरमिंघम पैलेस।"

"ट्रफालगर स्क्वायर।"

"पिकाडली सर्कस।"

"लन्दन ब्रिज टॉवर।"

"और उसके बाद एक भारतीय रेस्तराँ।"

"बहुत-बहुत धन्यवाद आली, तुम कितनी अच्छी हो। महीने भर में जितना लन्दन नहीं देखा, उतना तुमने कुछ घंटों में दिखा दिया।" जब रेस्तराँ में भारतीय भोजन के आगमन की प्रतीक्षा की जा रही थी, तब मेरे सामने बैठी यह तरुणी अपने आक्रामक सौन्दर्य के साथ मुस्कराकर अपना प्रभाव छोड़ती जा रही थी। आली के व्यक्तिगत जीवन में मैंने घुसने की कोशिश करते हुए पूछा : "क्या तुम अपनी पढ़ाई पूरी करने के बाद विवाह करोगी? २०-२१ वर्ष की तो हो ही न?"

"मैं २६ वर्ष की हूँ सतीश, पर विवाह? वह क्या आवश्यक है? देखो, मेरी पढ़ाई का यह अंतिम वर्ष है। उसके बाद मैं किसी बड़ी

व्यापार कम्पनी में नौकरी करना चाहती हूँ। मुझे काफी ..
एक खूबसूरत कार और विदेश की यात्रा। श्रोह, मैं विदेशी
को इसीलिए इतना अधिक चाहती हूँ कि स्वयं भी विदेश जाना
हूँ। मैं सोचती हूँ कि अगर मुझे अमेरिका में कोई नौकरी ।
तो सबसे अच्छा। वहाँ पैसा ज्यादा मिलेगा। अमेरिकन लोग
लड़कियों को जल्दी नौकरी भी दे देते हैं। जब मेरे पास ..
हो जायेगा, तब जापान भारत, रूस, और बर्लिन जाना चाहती ..
चाहती हूँ केवल प्रेम; वह भी किसी ऐसे युवक का प्रेम जो मुझे ..
लिए प्रेम दे। अधिकार न चाहे।" आली यह सब कुछ बड़ी .
में कह गयी।

मैंने पूछा : "मान लो, तुम्हारे सामने विवाह का कोई प्रस्ताव आता है तो तुम कैसा पति चाहोगी ?"

आली ने कहा : "सतीश, तुम समझ नहीं पाओगे मुझे। मेरी बातें सुनकर हँसोगे। देखो, यदि मुझे कोई ऐसा वृद्ध व्यक्ति मिले, जिसके पास खूब धन हो, बड़ा मकान हो, कई कारें हो, फैला हुआ व्यापार हो, तो मैं उसके साथ विवाह कर लूँगी।" आली ने हँसते हुए कहा : "क्या तुम्हारे भारत मे है ऐसा कोई राजा, जो मरने के पहले अपना सारा धन मेरे नाम वसीयत कर दे ?"

"तुम कैसा मज़ाक कर रही हो आली ?" मैंने कहा।"

"इसीलिए तो मैं कह रही थी, तुम मुझे समझ नही पाओगे। मुझे 'हसबैंड' शब्द से चिढ है, इसलिए अगर मुझे कोई हसबैंड चुनना ही पड़े तो मैं ऐसा चुनूँगी जो शीघ्र मर जाये और मेरे लिए प्रचुर धन छोड़ जाये।"

मुझ जैसे हिन्दुस्तानी के लिए सचमुच उसकी भावनाओं को समझ पाना कठिन था।

आली का सान्निध्य मादक भी था और प्रेमल भी। वह इंग्लैंड से प्यार करती है, पर मुझसे भी प्यार करती है। वह प्यार चाहती है, पर अधिकार नहीं। वह विदेशी मेहमानों को ज्यादा चाहती है। मेहमानों को तो स्नेह भर ही दे सकता है और चाह सकता है। उसके पास अधिकार पाने और हक जमाने के लिए फुर्सत ही कहां। मैं आली के साथ-साथ रेस्तरां से बाहर निकला पर आगे मैं कुछ देर सोचता रहा। हमें कार तक जाने के लिए दो फर्लांग चलना था। गाड़ी खड़ी करने के लिए पास जगह ही नहीं थी। मैं चलते-चलते आली के विचारों के साथ उसके व्यवहारों की तुलना कर रहा था। आली दिन भर मेरे साथ थी, अपना समय दे रही थी, पेट्रोल जला रही थी, मुझ बिना पैसे के विश्वप्रवासी को लंच खिला रही थी। क्या वह मुझसे भी बिना अधिकार का स्नेह चाहती है? मैं सोच रहा था। इतने में आली ने मेरे कंधे का सहारा लेकर चलना शुरू करते हुए पूछा: "किस विचार में उलझ गये हो तुम?"

फिर कार में सवार हुए और चले टेम्स के किनारे-किनारे। वह काफी दूर ले आयी थी मुझे। क्षेत्रफल में विश्व के सबसे बड़े शहर, लन्दन के एकदम बाहर। "अपनी कार होने से कितनी सुविधा होती

है। जब जाहो जहाँ चाहो, जा सकने की स्वतंत्रता। मुझे लन्दन की भू-गर्भ रेलों से सख्त नफरत है। एक तो वे बड़ी गन्दी रहती हैं। लोग सिगरेट के टुकड़े और कागज और न जाने क्या-क्या फेंकते हैं। दूसरे इन रेलों की भीड़। "वीक ग्रावर्स" में तो ये भू-गर्भ रेलें जान लेवा होती हैं। मैं अपने मित्र की बार-बार कृतज्ञ हूँ, इस कार के लिए।" यों कहते-कहते सड़क से एक ओर हटकर पेड़ के नीचे उसने कार रोक ली पेड़ के पत्ते झड़ चुके थे। सौंदर्य का यह प्रारम्भ। नवम्बर का महीना। कार पूरी तरह बन्द बाहर की ठंड का कोई असर नहीं। "कभी-कभी झड़े हुए पत्तोंवाले पेड़ को देखना भी बहुत भला लगता है। खासतौर से टेम्स के किनारे पर खड़े इस पेड़ को। कितना शान्त-स्थान है यह। लन्दन के शोर-शराबेवाले वातावरण से कितना भिन्न।" मैंने कहा।

"तुम ठीक कहते हो।" आली स्टेयरिंग के पास से खिसककर मेरे निकट आ गयी थी और अपना हाथ सीट के ऊपर से मेरे दूसरे कंधे पर रख दिया था। निकटता और निकट आ गयी थी। हमने लगभग एक घण्टा इसी झड़े हुए पत्तोंवाले पेड़ के नीचे कार में बिता दिया।

फिर वही लन्दन, वही चहल-पहल, वही शोर-शराबा।" एक एक लम्बी शांति के बाद यह बिजली, ये कारें और यह भीड़-भाड़ भी अच्छी लगती है।" आली ने कहा "चलो एक बढ़िया फिल्म चल रही है 'दि ग्रेट इस्केप' देखें। टेम्स की शांत कछार के बाद थोड़ी चिल्ल-पों ही सही।" हम सिनेमा-हाउस में घुसे।

और उसके बाद जब तक लन्दन में रहा, कुमारी आली के साथ मिलता रहा। हम साथ-साथ टेम्स के किनारे-किनारे घूमते रहे। एक दिन शाम के समय आली ने मुझे फोन पर पूछा: "आज रात क्या कर रहे हो?"

"क्या होगा पार्टी में ?"

"वही गाना, नाचना, पीना, गपशप, मिलना-जुलना आदि। पर तुम्हारे लिए इस प्रकार की पार्टी में चलना भी कुछ नयी तथा दिलचस्प बात होगी।" आँखों में मुस्कराहट और मैंने चलना स्वीकार कर लिया। आज वह भी कुछ विशिष्ट वेश-भूषा में सजी-संवरी होने से विशेष रूप से आकर्षक लग रही थी। चोंच की तरह नुकीली ऊँची एड़ियोंवाली सैंडिलें ! चाल में विशेष ठुमक, सौन्दर्य में एक तपन। सुनहरे रंग से रंगे किये हुए बाल, बढ़े हुए नाखूनों पर गुलाबी रंग, अधरों पर लिप-स्टिक की लालिमा। काले स्कर्ट पर सफेद कमीज और उस पर काले रंग की 'बो टाई' (नेकटाई) यह सौन्दर्य स्वाभाविक नहीं, मुझे मन ही मन लगा। पर मेरे दिमाग ने तर्क किया "इससे क्या, वह कितनी मोहक है ! यही काफी है।"

हम पार्टी में पहुँचे। पार्टी में आये हुए सभी लोग २० से ३० के बीच की उम्र के थे। यानी सभी जवान। उनमें से अधिकांश छात्र और छात्राएँ। पार्टी अपने जोर पर थी। हमें पहुँचने में लगभग ११ बज गये थे। कमरे में हलकी नीली रोशनी बिछी हुई थी। पर असल में रोशनी कम और अँधेरा अधिक था। युवक-युवतियाँ जोड़ों में बँटे हुए थे। रात्रि जवान थी। इस तरह की पार्टी में शामिल होना सचमुच

मेरे लिए नया अनुभव था। मैं और आली हाल के एकदम किनारे कोने में रखे एक सोफे पर बैठ गये। एकान्त, शान्त कोने में। "ऐसी पार्टी में मदिरा और भी मदिर हो उठती है।" आली ने कहा और दो प्यालों में मैंने मदिरा डाली। एक-दूसरे के गिलासों को हमने टकराया मित्रता के नाम पर हमने जाम पीये।

वाद्य की ताल के साथ पचासों युवक-युवतियों के जोड़े ठुमक-ठुमक कर नाचने लगे। मैंने रूस में सह-नृत्य सीखना प्रारंभ किया था और यहाँ पहुँचते-पहुँचते उसके लिए थोड़ा-थोड़ा अभ्यस्त हो गया था। इसलिए यहाँ की सभ्यता के अनुसार मैंने आली को नृत्य के लिए आमंत्रित किया। कमरे की रोशनी और भी डिम कर दी गयी। संगीत का स्वर नृत्य-प्रेरक था। इसी तरह रात भीगती गयी। संगीत बहता गया। नृत्य जमता गया। मदिरा ढलती रही।

मैं सोचता रहा सारे माहौल पर। यह जीवन और दुनिया! यह मदिरा नाच। यह पार्टी और रात। बीच में नृत्य के एक राउंड में हम नहीं उठे। लोग नाच रहे थे, हम देख रहे थे। कुछ बातें कर रहे थे। "ऐसी पार्टियाँ लड़के-लड़कियों के लिए अपने जीवन-साथी चुनने में भी बड़ी सहायक होती हैं। वे यहाँ आते हैं। घंटों साथ रहते हैं। बातचीत करते हैं। एक दूसरे को समझते हैं और इस तरह पूरी दिल जमई हो जाने के बाद विवाहित हो जाते हैं।" आली ने कहा।

"लेकिन तुम तो ऐसी पार्टियों में जीवन-साथी चुनने का प्रयास नहीं करती।" मैंने व्यंग्य किया।

"हाँ, मगर साथी तो चुनती हूँ। भले ही वह जीवन भर के लिए न हो।"

"क्या मतलब ?"

"मतलब बहुत गूढ़ है।"

"फिर भी जानूँ तो सही।" मैंने कहा।

"क्या तुम मेरे बारें में सब कुछ जानना चाहते हो ? तो लो सुनो। मैं अविवाहित हूँ, पर मैं एक माँ हूँ। चार वर्ष पहले मुझे माँ बनने की प्रेरणा हुई और मैं बनी भी।"

"तुम अविवाहित माता हो ? तो तुम्हारी सन्तान कहाँ है ?" मैंने जिज्ञासा की।

"एक बाल-मंदिर में। हमारे यहाँ ऐसी व्यवस्था है, ऐसी संस्थाएँ हैं, जो अविवाहित माताओं की सुविधा का प्रबन्ध करती हैं। मैं कभी-कभी अपने बालक को देखने भी जाती हूँ। वह बालक, अत्यंत कुशल और मनोवैज्ञानिक ढंग-से प्रशिक्षित नर्सों की देखरेख में पल रहा है। अगर मैं उसका पालन करती तो भी शायद उतने अच्छे ढंग से न कर पाती।" आली ने कहा।

"यद्यपि तुमने उस दिन रेस्तराँ में मुझसे कहा था कि तुम हसबैंड नहीं चाहती। पर जब सेक्स को एक शारीरिक जरूरत के रूप में तुम महसूस करती हो तो शादी कर लेने में भी क्या हर्ज है ?" मैंने पूछा।

"तुम पूछते हो शादी में हर्ज ही क्या ? मैं पूछती हूँ शादी की जरूरत ही क्या है ? आखिर मैं क्यों किसी एक ही पुरुष को अपना शरीर सदा के लिए अर्पित करूँ ? क्या विवाह के बाद नारी पुरुष की इच्छाओं को पूरी करने का माध्यम मात्र नहीं बन जाती ? आखिर मैं अपने जीवन को एक संकुचित घेरे में बांधूं भी तो क्यों ? विवाह, पत्नी, बच्चे, परिवार आदि के कारण ही व्यक्ति अनेक तरीकों से परेशान होता है। धन-संग्रह करता है। आदमी समाज के हितों को धक्का पहुँचाकर भी परिवार के हितों की रक्षा करता है। इसलिए अब धीरे-धीरे हम लोग ऐसा सोचते हैं कि व्यक्ति और समाज ये दो इकाइयाँ ही पर्याप्त होनी चाहिए। नारी और पुरुष समान रूप से स्वतंत्र जीवन बितायें। बच्चों के पालन की व्यवस्था व्यक्ति और समाज के सम्मिलित सहयोग से हो।"

"तुम्हारी यह व्याख्या तो बड़ी लुभावनी है आली, पर ...। मर्यादाहीन जीवन होगा, विवाह के अभाव में। आखिर समाज की व्यवस्था के लिए हमें चरित्र के कुछ नियम और सीमाएँ बनानी होंगी न ?" मैंने तर्क किया। उधर नाच अपनी तेजी पर था, इधर हमारी चर्चा। हम अपने में ही मशगूल थे।

"हाँ ये मर्यादाएँ, ये नियम, ये सीमाएं, ये चरित्र और शील की परम्पराएँ, सदियों से हमने इन मीठे शब्दों को सुना है। तुम्हारे देश में तो इन शब्दों का बहुत ऊँचा स्थान है न ? पर मुझे बताओ सतीश, कि इन मर्यादाओं की ओट में कितनी लाख स्त्रियाँ वेश्या बनकर अपना शरीर बेचने के लिए बाध्य हैं ? कितनी लाख स्त्रियाँ घर की चहारदीवारी में, पर्दे में बन्द रहकर अपने कामुक पति के अत्याचारों के नीचे दबी हुई सिसक रही हैं। और तुम तो उन देशों में भी गये हो जहाँ पति को चार-चार बीवियाँ रखने की इजाजत दी गयी है। उनकी क्या दशा है ? इसलिए मैं प्रेम पर विश्वास करती हूँ। मैं सौन्दर्य पर विश्वास करती हूँ। मैं उन्मुक्तता पर विश्वास करती हूँ। कानून और अधिकार की जो बात शादी में है, वह मुझे कतई पसंद नहीं।"

आली के साथ अब मैं ज्यादा तर्क करना नहीं चाहता था। संगीत का नया रिकॉर्ड चालू हुआ। नृत्य-कामी जोड़े फिर झूमने लगे। मैंने आली को हाथ पकड़कर उठाया और हम नाचते रहे। लगभग रात-भर। जब पार्टी समाप्त हुई तब घड़ी में चार बज रहे थे। मैं घर आकर सोया तो १० बजे सुबह तक सोया रहा।

और अगले ही दिन लन्दन से हम रवाना हो गये। आली और न्दन का प्रवास एक-दूसरे के साथ अविच्छिन्न होकर जुड़ गये, मेरी मृतियों में।

अमेरिका

कुमारी बेवर्ली

अमेरिका में छह महीने की हमारी यात्रा में एक दिन भी किसी होटल में नहीं कटा। प्रतिदिन किसी न किसी परिवार में ही ठहरते थे। अमेरिका की धरती पर पाँव रखते ही हम जिस लड़की के घर मेहमान बने वह हमारी प्रथम मेजबान कुमारी बेवर्ली विशेष रूप से याद आती है।

ग्रेट-ब्रिटेन से हम 'क्वीन-मेरी' नाम के जहाज से चले थे। यह जहाज ५ दिन की अविराम समुद्र की संतरण यात्रा के बाद जब उत्तरी अमेरिका के किनारे पहुँचने लगा, तो लगभग सूर्यास्त का समय था। २७ नवम्बर का वह सूर्यास्त कभी भुलाये नहीं भूलता। एक ओर न्यूयार्क के मेनहेट्टन आइलैंड की आकाश को छूनेवाली इमारतों में से निकल रही रोशनी तथा दूसरी ओर क्षितिज-पार जाता हुआ या समुद्र में डूबता हुआ सूर्य-प्रकाश। मैं एक बार मेनहेट्टन की ओर झांकता था, तो दूसरी बार इस प्रवासी सूरज की तरफ। हमारे चार मंजिलोंवाले

जहाज के डेक पर हजारों यात्री खड़े थे और इस भव्य दृश्य का आनन्द ले रहे थे। मैंने न्यूयार्क के चित्र अनेक पुस्तकों तथा अमेरिकी दूतावास की रंगीन पत्रिकाओं देखे थे। ऐसा लगता था कि अब भी मैं कोई चित्र ही देख रहा हूँ—धरती पर बनाया हुआ एक अद्भुत चित्र। हाँ अद्भुत भी, खूबसूरत भी और कुछ जोखिम भी। मेरे लिए न्यूयार्क का अर्थ था, लिबर्टी स्टेच्यू और १०८ मंजिलोंवाली एम्पायर स्टेट बिल्डिंग। मैं जहाज के डेक पर आया तो सबसे बड़ी उत्सुकता थी इन दोनों को देखने की।

हमारा जहाज धीरे-धीरे लिबर्टी स्टेच्यू के पास से ही गुज़र रहा था। मैं कुछ हतप्रभ-सा वह सब देख रहा था। क्या यह वही लिबर्टी स्टेच्यू है, जिसका नाम मैंने हजारों बार सुना और जिसे देखने के लिए मैं इतना उतावला था?

हमारा जहाज किनारे लग गया। पीठ पर थैला रखकर मैं अपने इस जहाज से विदा लेने लगा। वह सिनेमा घर, जिसमें प्रतिदिन मुफ्त सिनेमा दिखाया जाता था, वह नाचघर, जिसमें मैं बार्बरा के साथ, जीन के साथ और उन अनेक युवतियों के साथ जिनके मैं नाम भी नहीं जानता, ट्विस्ट डांस करना सीखता रहा। वह स्विमिंग पुल। (तैरने का तालाब), जिसमें बिना तैराकी आने भी मैं कुमारी ल्यूसी, श्री पीटर और श्री जॉन के साथ नहाता खेलता रहा। वह बार, जहाँ मेरी, मिलर आदि के साथ हम शराब की चुस्कियाँ लेते रहे। वह पुस्तकालय, जहाँ बैठकर मैं जहाज में ही छपनेवाले दैनिक से लेकर 'लाइफ', 'न्यूजवीक', जैसी पत्रिकाएँ और 'दि अदर अमेरिका' जैसी पुस्तकें पढ़ता रहा। वह लौंज, जहाँ के एकान्त सोफे पर बैठकर मैं श्रीमती लता, कुमारी नगीना, किशोर, भँवरमल सिंघी, डा० भारती सिद्धराज ढड्ढा आदि को लंबे लंबे पत्र लिखता रहा। इन सबसे मैंने विदा ली। अधिकारियों और कर्मचारियों से भी, जिन्होंने

गोद में बैठती, मुंह चूमती। बेवर्ली को इस कुतिया से बड़ा मोह था और निश्चय ही वह लुभावनी कुतिया मोह लायक भी थी।

यों बेव के घर पर हमारा जीवन प्रारंभ हुआ। बेव अपने भाई के साथ रहती थी। भाई रात की ड्यूटी पर जाता था, इसलिए वह रात को घर पर अकेली ही रहती थी। कई वर्ष पहले बेव ने एक युवक से प्यार किया था और उसके साथ विवाह भी कर लिया था। बेव ने बताया : "वह बहुत ही सरल और शांत युवक था। हम साथ-साथ काम करते थे। मुझे उसके प्रति आकर्षण हुआ। मैंने सोचा, मैं उसके बिना नहीं रह सकती और मैंने उसके साथ विवाह कर लिया। थोड़े महीनों बाद ही हमारे मनों में भेद आने लगा। वह शांत युवक और मैं चंचल स्वभाववाली। हमारी आपस में जमी नहीं। हमने तय किया कि अगर हम प्रेम के साथ नहीं रह सकते तो अच्छा है कि दो मित्रों की तरह अलग-अलग रहें। तब हमने तलाक़ ले लिया पर अभी भी हम मिलते रहते हैं, दो मित्र की तरह।" यों बेव ने बड़ी स्पष्टता के साथ अपने बारे में सब कुछ बताया।

रात को मैंने सोने की कोशिश की। परन्तु न्यूयार्क की अद्भुत चमक-दमक मेरे मन-मस्तिष्क पर छायी हुई थी। मैं सोचता रहा। बहुत से सपने संजोता रहा। यों सवेरा हो गया। बेव ने हमारे लिए नास्ता टेबल पर लगा दिया। ग्रेप-फ्रूट पर शहद, टोस्ट पर मक्खन और मार्मलेट। कॉर्न फ्लेक और दूध। संतरे का रस। कॉफी। नास्ते के बाद हम लोग बाहर जाने के लिए तैयार हो गए। बेव ने काले रंग के मोजे पहने। उस पर काले रंग का ही स्कर्ट। काले रंग का ब्लाउज और काले रंग का ही लेदर कोट। सिर पर काले रंग का स्कार्फनुमा रूमाल। केवल चेहरा ही गोरा था, बाकी कहीं गोरापन दिखाई नहीं पड़ता था। एड़ी से चोटी तक के काले परिधान के बीच गोरा-सा मुखड़ा अत्यंत सुन्दर प्रतीत हो रहा था। मैं बेव की सुन्दरता पर

मुग्ध हो गया और मैंने कहा : "तुम्हारा मुख वैसा ही है, जैसा काली घटाओं के बीच चाँद।" मेरे इस ... बहुत प्रसन्न हुई। वैसे काले मोजे पहनना ऊँचे घरों में माना जाता। परन्तु बेवर्ली कुछ बीटनिक कवियों से ... इसलिए वह अपने आपको 'नोन कन्फर्मिस्ट' लोगों में ... थी। उसकी यह वेष-भूषा उसी के अनुकूल थी।

बेव ने हमें न्यूयार्क शहर घुमाया। 'थैंक्स गिविंग डे' ... जा रहा था। संयुक्त-राष्ट्र-संघ के सामने शांतिवादियों द्वारा ... एक 'विजिल' में हमने भाग लिया। बेव हमें संयुक्त-राष्ट्र-संघ के के अंदर लेकर गई। घंटे भर हम वहाँ रहे। वहाँ पर शाम हो गई। 'विजिल' समाप्त होने के बाद हम टाइम स्क्वायर आये। रात्रि प्रारंभ हो गई थी। टाइम स्क्वायर बिजली के प्रकाश से भरा हुआ था। पेरिस में प्लास दि ला कोंकोर्ड मे मैंने हजारों बत्तियों का प्रकाश देखा था, वह प्रकाश यहाँ आकर तो द्विगुणित-सा हो गया था। जगह-जगह सिनेमाघर और रेस्तराँ थे। एक रेस्तराँ में हमने कुछ खाया-पीया। साइन बोर्ड लगा था, जिस पर लिखा था : यहाँ 'हॉट-डॉग' मिलते हैं। मैं 'हॉट डॉग' का मतलब समझ ही नहीं पाया। मैंने बेव से पूछा : "क्या अमेरिकी लोग 'डॉग' (कुत्ता) भी खाते हैं?" मेरा प्रश्न बड़ा अटपटा था पर सरल था। बेव ने मेरे प्रश्न का बुरा नहीं माना और हँस कर बोली : "पता नहीं 'हाट-डॉग' का यह नाम किसने कैसे रखा। परन्तु इस 'डॉग' का सम्बन्ध असली 'डॉग' से बिलकुल नहीं है। यह तो विभिन्न प्रकार के मास खंडों से निर्मित पदार्थ है।" सैकड़ों लोगों से भरे हुए रेस्तराँ, हजारों कारों से भरी हुई सड़कें, लाखों बत्तियों के प्रकाश से भरी हुई रात्रि और अनन्त जिज्ञासाओं से भरा हुआ हमारा हृदय, न्यूयार्क के टाइम स्क्वायर के इर्द-गिर्द घूम रहा था। हम घूम रहे थे।

वेव के साथ न्यूयार्क में १० दिन मेहमान रहे। वह हमें ब्रोडवे और उसके आसपास के जीवन तक ले गई। ब्रोडवे के थियेटरों में हमने अभिनय देखे। कुछ ऑफ ब्रोडवे नाटक भी देखे। मुझे दो-एक ऑफ-ब्राडवे नाटक वहुत पसन्द आए। उनमें बहुत नये प्रयोग, नई विधा और नई शैली का उपयोग किया गया था। रेडियो-थियेटर-बिल्डिंग में भी वेव हमें ले गई, जहाँ हमने संगीत, नृत्य और सिनेमा का मिला-जुला कार्यक्रम देखा। यह रेडियो-थियेटर भी एक गजव की जगह है। २७०० लोग एक साथ बैठकर कार्यक्रम देख रहे थे। मॉस्को के क्रेमलिन में एक कांग्रेस हाल है, वह भी इसी तरह से बड़ा हाल है। इसी तरह ग्रीनविच विलेज की सड़कों पर भी बेव ने मुझे कई बार घुमाया और बीटनिक समाज के निकट पहुँचाया। एम्पायर स्टेट बिल्डिंग के नीचे से गुजरते या वाशिंगटन ब्रिज पार करते या लोंग आइलैंड की स्वच्छ शांत बस्तियों में घूमते या लिवर्टी स्टेच्यू के आसपास नौका-विहार करते हुए मैं वेव के साथ जीवन से संबंधित अनेक सवालों पर खूब चर्चा करता रहा।

बेवर्ली की वाक्-पटुता और तर्क-शक्ति का मुझे कायल होना पड़ा। वह रात को १ बजे या २ बजे तक भी चर्चा करते-करते नहीं थकती थी। प्रेम, विवाह, सेक्स, परिवार आदि सभी विषयों पर हम बहस करते थे और बेवर्ली खुलकर अपने विचार बताती थी। बेवर्ली का विचार था : "जहां प्रेम है, वहाँ सेक्स है ही। आंतरिक प्रेम की वाह्य अभिव्यक्ति को ही सेक्स कहते हैं। शारीरिक सम्बन्ध मानसिक सम्बन्धों का ही पूरक है।"

श्री बायार्ड रस्टिन

भारत से अमेरिका की धरती पर पहुँचे हुए यात्री के लिए अमेरिका के नीग्रो आंदोलन को समझने का आकर्षण बहुत महत्व रखता है। हम अमेरिका पहुँचे तो यह जिज्ञासा काफी तीव्र थी कि जल्दी से जल्दी किसी ऐसे नीग्रो नेता के सम्पर्क में आएँ जो समानाधिकार के इस आंदोलन का सही-सही परिचय दे सकें।

जिन दो नीग्रो नेताओं के नाम मेरे लिए चिर-परिचित थे उनमें एक थे डा० मार्टिन लूथर किंग और दूसरे थे बायार्ड रस्टिन। श्री किंग दक्षिण के किसी राज्य में रहते थे इसलिए उनसे शीघ्र मिल पाने की उम्मीद नहीं थी; पर रस्टिन तो न्यूयार्क में ही थे, इसलिए उनसे मिलकर नीग्रो आंदोलन को समझने की मेरी उत्कण्ठा बड़ी तीव्र हो गयी।

अमेरिका के श्वेतांग समाज में अपनी क्रांतिमूलक जीवन-प्रक्रिया के कारण जिन व्यक्तियों ने आदर तथा यश प्राप्त किया है उनमे श्री बायार्ड रस्टिन का बहुत ऊँचा स्थान है। श्री रस्टिन को अपने जीवन में जो एकमात्र सिद्धि हासिल हुई है उसका नाम है—शोषण, दमन और अन्याय को हरा देने के संघर्ष मे दृढ़-निष्ठा। उनकी इस सिद्धि के बारे मे मैंने कई बार सुना और पढा था।

२७ नवम्बर १९६३ की संध्या, जब मैंने अमेरिका की धरती पर पहला कदम रखा तभी से मैं अपनी मेजबान सुश्री बेवर्ली से कहता

लगाया। "यह सब हमारी सरकार की कारगुजारी है। किसी सिर फिरे वैज्ञानिक ने कह दिया कि सिगरेट से कैंसर होने का भी खतरा है तो अब सरकार ने सिगरेट बनानेवाले कारखानों को यह आदेश दे डाला है कि ऐसा लिखे बिना सिगरेट कारखाने से बाहर न जाये और न बिके।" खैर, रस्टिन के इस विश्लेषण से सिगरेट से मेरी जान बची।

मैंने मदिरा की प्याली होठों पर रखी और इस तरह हमारी बात आगे बढ़ी। मैं अमेरिका के एक प्रसिद्ध नीग्रो नेता के पास बैठा हूं, इस बात का मुझे एहसास तक नहीं हो रहा था। रस्टिन की सादगी में अहंभाव और बनावट विलीन हो चुकी थी। ५३ वर्ष के इस अविवाहित नीग्रो के साथ वार्तालाप करते हुए कभी-कभी मुझे लगता था कि मैं किसी मनचले युवक के साथ रँगरेलियाँ कर रहा हूं, पर कभी-कभी उनकी गंभीर भाव-भंगिमा और दार्शनिक की-सी बातें मुझे इस का स्मरण करा देती थीं कि मैं किसी चिंतक के साथ हूँ। जब वे नीग्रो अधिकारों के आंदोलन की बात कहते थे तो मुझे किसी जोशीले क्रांतिकारी की याद हो आती थी। रस्टिन का असली रूप कौन-सा है, यह तय कर पाना मेरे लिए कठिन हो रहा था। शायद इन सब रूपों का मिश्रण ही बायार्ड रस्टिन हैं।

श्री रस्टिन में नीग्रो आंदोलन के प्रदर्शनों को संगठित करने की अद्भुत क्षमता है। अगस्त १९६३ में नीग्रो अधिकारों के लिए वाशिंगटन में जो ऐतिहासिक प्रदर्शन हुआ था उसके संयोजक रस्टिन ही थे। उनकी क्षमता का कमाल तब सारी दुनिया ने देखा जब उन्होंने अमेरिका के कोने-कोने से दो लाख प्रदर्शनकारियों को वाशिंगटन में इकट्ठा कर लिया और उस विशाल जुलूस का सफलता के साथ संचालन किया। उस महान आयोजन के प्रवक्ता अगर मार्टिन लूथर किंग थे, तो आयोजक श्री रस्टिन।

"अब नीग्रो-आंदोलन किस दिशा में आगे जायेगा ?" मैंने सिगरेट और मदिरा से श्री रस्टिन का ध्यान हटाते हुए सवाल किया। "यही सवाल तो हमारे सामने भी है। केवल हजारों लोगों का प्रदर्शन हो जाये, बसों और स्कूलों का बहिष्कार हो जाये, पिकेटिंग और धरने चलते रहें, इतना ही पर्याप्त नहीं है। नीग्रो-क्रांति जब तक समग्र राष्ट्रीय क्रांति का आधार नहीं बनेगी तब तक नीग्रो लोगों को उनके वास्तविक अधिकार प्राप्त नहीं होंगे, हालांकि यह प्रदर्शन और सत्याग्रह चलते रहेंगे, पर जब तक आर्थिक क्रांति के लिए कोई पक्की योजना न बने और श्वेतांग समाज के हृदय को हम न बदल दें तब तक केवल सरकारी कानूनों के बदल जाने मात्र से हम अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकेंगे।"

"लेकिन उस मंजिल तक पहुँचने के लिए कार्यकर्ताओं की एक बड़ी जमात होनी चाहिए। आपको इस प्रकार के अच्छे ट्रेण्ड कार्यकर्ता कैसे मिलते हैं ?"

"हमने उसके लिए रास्ता बनाया है।" श्री रस्टिन ने कहा। "हम लोग समय-समय पर फ्रीडम स्कूल चलाते हैं। इन स्कूलों में विद्यार्थियों व युवकों को दो-तीन महीने रहने का अवसर मिलता है। हम इस दौरान अहिंसक प्रक्रिया के द्वारा समाज-परिवर्तन कैसे सम्भव है, इसका समुचित प्रशिक्षण देते हैं। साथ ही साथ नीग्रो बस्तियों में भी ये विद्यार्थी जाते हैं और समस्याओं का प्रत्यक्ष अध्ययन करते हैं। हम लोग मनोवैज्ञानिक विधि के साथ अहिंसा का पाठ अपने कार्यकर्ताओं को सिखाते हैं, अहिंसात्मक आंदोलन के तौर-तरीकों पर अनुसंधानात्मक कार्य भी हम लोग करते-कराते हैं।"

श्री रस्टिन का यह विश्लेषण सुनकर तो मैं दंग रह गया। जहाँ [illegible]ा और अहिंसा का बहुत नाम लेते हैं, उस भारत में भी [illegible] ने के लिए शायद ही कहीं इस प्रकार के स्कूल

और नुकीला कांटा चुभ गया। मैंने फ़ैसला किया कि अब मैं इस रंग-भेद को मिटाकर ही दम लूंगा। बचपन का वह फ़ैसला अब तक मेरे साथ है।"

श्री रस्टिन के जीवन की पूरी कहानी सचमुच उनके उपर्युक्त, फ़ैसले के साथ जुड़ी है। उन्होंने १९४७ में सबसे पहले नीग्रो अधिकारों के लिए आयोजित प्रदर्शन में हिस्सा लिया और २२ दिन जेल की हवा खायी। फिर तो इन प्रदर्शनों का आयोजन और संचालन उनके जीवन का अनिवार्य अंग ही बन गया वे १९५५ से १९६० तक मार्टिन लूथर किंग के सलाहकार के रूप में रहे और अनेक बार वाशिंगटन में राष्ट्रपति भवन के सामने जुलूसों तथा प्रदर्शनों का नेतृत्व किया।

हमारी बातचीत के बीच में अन्य साथी भी भाग लेते रहे और अन्य शांतिवादी नेतागण भी अपने विचार कहते रहे।

डा० मार्टिन लूथर किंग

सन् १९६४ के नोबेल श[illegible] करने और
१९६५ में सेलमा से मोंटगोमरी [illegible] बा[illegible]
मार्टिन लूथर किंग का [illegible]

रह गया है। उनसे व्यक्तिगत मुलाकात करने का तथा निजी तौर पर विचार-विमर्श करने का मुझे सौभाग्य मिला, यह मेरे लिए एक गर्व की बात है।

अमेरिका आकर यदि मैं डा० मार्टिन लूथर किंग से न मिला, तो मेरा अमेरिका आना अधूरा ही रहेगा, यह विचार मुझे बार-बार कोंच रहा था। मैं और सह यात्री प्रभाकर लगभग एक हजार मील की यात्रा करके अमेरिका के दक्षिणी राज्य जॉर्जिया की राजधानी अटलांटा पहुँच गये।

नीग्रो-स्वातंत्र्य के इस अहिंसावादी नेता का नाम सबसे पहले मैंने सन् १९५४ में सुना था, जब उन्होंने मोंटगोमरी के बस बहिष्कार-आंदोलन का सफल नेतृत्व किया था। यह बस बहिष्कार गांधीवादी ढंग के सत्याग्रह का एक नमूना था। उसके बाद जब श्री किंग सन् १९५९ में भारत आये, तब श्री विनोबा भावे से हुई उनकी बातचीत को सुनने का मुझे अवसर मिला था और तभी से श्री किंग के आंदोलन में मेरी रुचि दिन-प्रतिदिन बढ़ती गयी।

श्री किंग अपने पिता और दादा की परम्परानुसार एक बेपटिस्ट चर्च के मिनिस्टर हैं। धर्म के सम्बन्ध में उनके विचार बहुत उदार तथा प्रगतिशील हैं। उनका कहना है : "वह धर्म किस काम का जो केवल आत्मा और परमात्मा की गुत्थियाँ सुलझाने में लगा है और समाज की समस्याओं से मुँह मोड़कर चलता है ?"

हमारी यह मुलाकात श्री किंग के कार्यालय के १६ फीट के चौकोर कमरे में हुई। उनके कमरे में नीग्रो-समस्या, अहिंसा, गांधी आदि विषयों पर २०० से अधिक पुस्तकें हैं, जिनमें से वे नीग्रो आंदोलन के लिए दार्शनिक तथा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्राप्त करते हैं।

श्री किंग नीग्रो-आंदोलन के प्रतीक बन गये हैं। अमेरिका की साप्ताहिक पत्रिका 'टाइम' ने सन् १९६३ के लिए डा० किंग

को 'वर्ष का व्यक्तित्व' घोषित किया। उन्हीं के नेतृत्व में अमेरिका के दो करोड़ नीग्रो नागरिकों ने सारे देश को और सरकार को इस बात के लिए बाध्य कर दिया कि अब भेद-भाव की नीति और परम्परा को समाप्त करना ही होगा। डा० किंग के नेतृत्व की विशेषता यह रही है कि वह अहिंसा, सत्याग्रह और असहयोग को नीग्रो-स्वातंत्र्य की मंजिल पर पहुँचने का एकमात्र मार्ग मानते हैं। यही कारण है कि वह नीग्रो-स्वातंत्र्य के वैसे ही एकच्छत्र नेता बन गये है, जैसे भारत-स्वातंत्र्य-आंदोलन के नेता गांधीजी थे। सुबह ६ बजे से लेकर आधी रात के बहुत बाद तक काम में जुटे रहनेवाले इस ३५ वर्ष के युवक नेता में काम करने की बेहद ताक़त है। नीग्रो-आंदोलन के एक कार्यकर्ता ने मुझसे कहा : "गांधीजी मरने के बाद किसी हरिजन के घर में जन्म लेना चाहते थे, परन्तु बाद में शायद अमेरिका के नीग्रो लोगों की दुर्दशा देखकर उन्होंने अपना विचार बदल दिया और ऐसा लगता है कि श्री किंग के रूप में उनका कायाप्रवेश हुआ है। वे अमेरिका के गांधी हैं।" मैं तो इस तरह के अवतारवाद में विश्वास नहीं करता, इसलिए मैंने उपर्युक्त कार्यकर्ता की बात का खंडन ही किया। परन्तु इस बात से मुझे यह अंदाज़ा अवश्य मिला कि श्री किंग और गांधीजी के काम के ढंग में कितनी समानता है।

सन् १९६३ में रंग-भेद-नीति के गढ़ माने जानेवाले शहर बर्मिंघम को श्री किंग ने रणभूमि बना दिया। जब श्री किंग गिरफ्तार होकर जेल गये, तब सारा नीग्रो-समाज जाग उठा और ३३ हजार नीग्रो लोगों ने जेलों को भर दिया। इस तरह नीग्रो-समानता की पुकार सारी धरती पर छा गयी। अमेरिका के ८०० शहरों में प्रदर्शन, सत्याग्रह तथा गिरफ्तारियाँ हुईं। इस जबरदस्त आंदोलन के कारण कुछ धार्मिक चर्च नेताओं का दिल भी घबरा उठा और इन प्रतिष्ठित चर्च-नेताओं ने श्री किंग के उपक्रम पर 'जल्दबाजी' का आरोप लगाया। इस

आरोप का उत्तर देते हुए बर्मिंघम जेल में बैठे हुए श्री किंग ने अखबारों के हाशियो पर (क्योंकि जेल में कोई कागज उपलब्ध नही थे ।) इन चर्च नेताओं के नाम एक खुली चिट्ठी लिखी। आज वह एक ऐतिहासिक चिट्ठी मानी जाती है और नीग्रो-आंदोलन की शास्त्रीय व्याख्या के रूप मे उस चिट्ठी का महत्व आंका जाता है। इस चिट्ठी मे श्री किंग ने थोड़े से शब्दो मे—वह सब कुछ कह डाला, जो बड़ी-बड़ी पुस्तकों मे भी इससे पहले नही कहा गया था।

एक नम्र, भोला और सरल व्यक्तित्व प्रकट करनेवाला चेहरा, साढ़े पाँच फुट का ठिगना कद, अत्यन्त सादगी व्यक्त करनेवाला रहन-सहन, बाल सुलभ निष्कपट आँखें और दार्शनिक सुलभ स्वभाव, यही है डा० किंग का प्रथम दर्शन। उनके घर मे गांधी का एक चित्र टगा है। बातचीत के दौरान वह गांधी, थोरो और टालस्टाय का अक्सर उल्लेख करते हैं। कांट, हेगल आदि दार्शनिकों को उन्होने गहराई से पढ़ा है, इसलिए उनकी बातचीत मे दार्शनिक की-सी पृष्ठभूमि बहुत सहज हो गयी है। श्री किंग की प्रवृत्तियों को पसद न करनेवाले उन पर सदा नजर लगाये रहते हैं। उनके घर में तीन बार बम फट चुके हैं। उन पर चार बार असफल हमला किया जा चुका है। वह १७ बार जेल मे ठूँसे जा चुके हैं, फिर भी अहिंसा के सिद्धांत मे उनका विश्वास अटल है। जब वह अपने अहिंसात्मक आंदोलन का विश्लेषण प्रारभ करते है, तब उसका कहीं अंत नही होता। मैंने उनसे पूछा : "नीग्रो-स्वातंत्र्य की सिद्धि के लिए अहिंसा कहाँ तक सफल हो रही है ?" तो श्री किंग ने उत्तर देते हुए एक लम्बा विश्लेषण प्रस्तुत किया। वह बोले: "अहिंसा की सफलता को हम रातो-रात नही देख सकते। मनुष्य की आदतें और पूर्वाग्रह आसानी से नही बदले जा सकते। पर जो कार्यकर्ता अहिंसा की प्रतिज्ञा के साथ कर्म क्षेत्र में उतरते हैं, उनका जीवन-परिवर्तन तो होता ही है। इसके अलावा आज इस अहिंसात्मक

आंदोलन की चर्चा लाखों जबानों पर है, सैकड़ों रेस्तराँ, बसें-रेलें आदि भेद-भाव की नीति से मुक्त हुई हैं।"

"आप के इस अहिंसात्मक नीग्रो-आन्दोलन पर तथा स्वयं आप के विचारों पर गांधीजी का प्रभाव कहाँ तक है ?" मैंने पूछा।

"एक हद तक गांधीजी ही मेरी प्रेरणा हैं।" श्री किंग ने झट उत्तर दिया : "जब मैंने गांधीजी के सत्याग्रह के तरीकों को पढ़ा, तब मुझे ऐसा लगा, मानो मेरे ही मन की बात को किसी ने भाषा दे दी हो। मुझे पहली बार इस बात का स्पष्ट दर्शन हुआ कि ईसा मसीह के सिद्धांतों को जीवन-व्यवहार में अपनाकर गांधीजी के तरीके से सामाजिक तथा राजनीतिक विवादों को हल किया जा सकता है। खासतौर से नीग्रो-स्वातंत्र्य की प्राप्ति के लिए गांधीजी का तरीका न केवल सिद्धांत के रूप में; बल्कि एक कारगर हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। इस बात का सक्रिय अनुभव मुझे तब हुआ, जब मोंटगोमरी में हमने दृढ़ता-पूर्वक इस हथियार का प्रयोग किया और सफलता पायी।"

"आप तो भारत की यात्रा कर चुके हैं। उस यात्रा का आप के मन पर क्या प्रभाव पड़ा ?"

श्री किंग ने कहा : "भारत-यात्रा का सौभाग्य मेरे जीवन की अद्भुत घटना है। उस धरती पर जहाँ गांधी ने जीवन बिताया, मेरा जाना, तीर्थयात्रा जैसा ही था। उन लोगों से मिलना और बातचीत करना, जिन्होंने गांधी के साथ काम किया, मेरे लिए असाधारण आनन्द की बात थी। खासतौर से विनोबा, नेहरू, श्रीमती अमृतकौर तथा जयप्रकाशनारायण ने मुझे अत्यन्त प्रभावित किया। यदि अहिंसात्मक सिद्धांतों के बल पर एक देश राजनीतिक आजादी प्राप्त कर सकता है, तो हम नीग्रो सामाजिक आजादी और नागरिक समानता प्राप्त करने के लिए उन्हीं सिद्धांतों पर क्यों न चलें ? इस

विचार ने मेरे जीवन को ही बदल डाला। इसलिए अपने ऊपर भारत का महान उपकार मानता हूँ।"

श्री किंग एक असाधारण वक्ता हैं। इस व्यक्तिगत मुलाकात के अलावा मुझे दो बार उनके भाषण सुनने का भी अवसर मिला। उनकी ओजस्वी वाणी श्रोताओं पर जादू का-सा असर करती है। पिछले साल जब वाशिंगटन में नीग्रो-आन्दोलन को अभिव्यक्ति देनेवाला विश्व-विश्रुत जुलूस निकला, तब डा० किंग ने दो लाख लोगों की अद्भुत भीड़ के सामने घोषणा की : "अब नीग्रो-स्वातंत्र्य का घंटा बजने दो।" इस घोषणा ने सारे देश को हिला दिया और अब इस घटे को बजने से कोई शक्ति रोक नहीं सकती।

श्री किंग बहुत आशावादी व्यक्ति हैं और उनका यह आशावाद ही नयी शक्ति देता है। हमारी बातचीत के दौरान उन्होंने अपनी अनेक योजनाओं पर प्रकाश डाला और कहा : "नीग्रो-समाज के बीच विभिन्न रचनात्मक प्रवृत्तियों का आयोजन करना ही हमारे आन्दोलन को मजबूत बनायेगा। रचनात्मक काम के बिना प्रदर्शन, सत्याग्रह और असहयोग-आन्दोलन उसी तरह सूख जायेगा, जैसे बिना पानी के पौधा सूख जाता है।"

जब हमने अमेरिका में डॉ० मार्टिन लूथर किंग के नेतृत्व में चलने-वाला अहिंसात्मक नीग्रो-आन्दोलन देखा और डॉ० किंग से मिले, तो मुझे लगा कि शायद भारत को अहिंसा का मार्ग यहीं से सीखना पड़ेगा और शांतिमय आंदोलन के द्वारा समानता को कैसे प्राप्त करें, इसके सक्रिय तरीकों को आयात करना होगा।

इतिहास की यह अपूर्व घटना मानी जायेगी कि अहिंसक आंदो-लन के सेनानी तथा सत्याग्रह के मार्ग पर योद्धा की भाँति आगे बढ़ने-वाले श्री किंग को संसार का सबसे बड़ा पुरस्कार, नोबेल प्राइज, देकर उनके अहिंसा संबंधी विचारों का सम्मान किया गया है।

परन्तु गोरी चमड़ी को श्रेष्ठता का प्रतीक माननेवाले कुछ प्रतिक्रिया-वादी लोग केनेडी-जॉन्सन की अपील को मानने के लिये राजी नहीं हो रहे थे।

मलकम एक्स ने स्पष्ट शब्दों मे कहा था : "गोरेपन के अभिमान में चूर, अहिंसा की भाषा कभी भी नहीं समझेंगे। अतः हमें अपने बचाव के लिए बंदूक चलाने का प्रशिक्षण लेना चाहिए और गोरों के अन्यायों को समाप्त करने के लिए ईंट का जवाब पत्थर से देना चाहिये।" अगर इस युवा नीग्रो नेता की सीख पर अमल किया जाये, तो इसमें संदेह नहीं कि अमेरिका मे गोरों और कालों के बीच रक्तपात का वैसा ही खतरा है, जैसा कि सन् १९४७ मे भारत मे हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच हुआ। हिंसा का आदेश करनेवाले मलकम एक्स स्वयं हिंसा के शिकार हुए और उन्हीं के एक अनुयायी ने कुछ मतभेदों के कारण उन पर गोली चला दी।

आज अमेरिका का नीग्रो एक दुराहे पर खड़ा है। एक ओर मलकम ऐक्स का बन्दूकी रास्ता है और दूसरी ओर डॉ॰ मार्टिन लूथर किंग सद्भावना और अहिंसा का दीप लेकर खड़े हैं। यह नीग्रो 'नागरिक अधिकार कानून' के निर्णय से कुछ आश्वस्त हुआ है। यदि यह कानून अस्वीकार हो जाता, तो निराशा, असंतोष और प्रतिक्रिया की चपेटों में उलझा हुआ नीग्रो किस मार्ग की शरण लेता, यह कहना कठिन है। प्रारंभ मे यह कानून कांग्रेस ने तो स्वीकार कर लिया था, पर सिनेट में आकर यह अटक गया। एक डेमोक्रेट राष्ट्रपति द्वारा उपस्थित यह बिल डेमोक्रेट सदस्यों के विरोध के भँवर में उलझा हुआ था। गोरी चमड़ी की उद्दण्डता के पोषक कुछ सदस्य इस बिल मे अनेक संशोधन उपस्थित करके उसे धारहीन, कमजोर और लँगड़ा बना देना चाहते थे। डॉ॰ मार्टिन लूथर किंग ने मुझसे कहा : "ये सारे संशोधन न केवल कानून के रूप को ही बदल डालते, बल्कि उसे पूरी तरह निकम्मा ही

बना देते। इस संशोधित बिल को स्वीकार करने के बजाय बिल का न होना ही ज्यादा अच्छा था।" डा० किंग ने मुझे एक दूसरे प्रश्न के उत्तर में बताया : "अमेरिका पर दुनिया की नजरें लगी हैं। जनतंत्र, व्यक्ति-स्वातंत्र्य और समानता के आदर्शों के लिए सदा से हमारे देश के नेता वकालत करते रहे हैं। यदि अपने देश में ही हम इन सिद्धांतों पर अमल नहीं कर सकते तो दुनिया को किस मुंह से उपदेश दे सकेंगे ? इसलिए नीग्रो-समानता नैतिक दृष्टि से तो अनिवार्य है ही, राजनैतिक दृष्टि से भी उसका महत्व कम नहीं।" डा० मार्टिन लूथर किंग संपूर्ण नीग्रो-आन्दोलन के सूत्रधार माने जाते हैं।

मैं अपनी अमेरिका-यात्रा के दौरान लगभग १०० शहरों में घूमा हूँ। लगभग ३०-३५ विश्व-विद्यालयों में मैंने भाषण किये हैं। अहिंसा और गांधी नीग्रो-आंदोलन के कारण लोगों के लिए विशेष चर्चा और अध्ययन के विषय बन गये हैं। प्रसिद्ध विचारक और लेखक रिचार्ड बी० ग्रेग ने मुझसे मुलाकात में कहा : "मैं कई बार आश्चर्यचकित रह जाता हूँ, जब देखता हूँ कि अमेरिका के नीग्रो छात्र ठीक वही भाषा बोलते हैं, जो भाषा गांधीजी बोला करते थे।" इससे यह स्पष्ट है कि अमेरिका के नीग्रो अपना आन्दोलन धीरज और गंभीरता के साथ चला रहे हैं। पर उनके धीरज का बाँध दूसरे पक्ष की हठधर्मिता के कारण कहीं टूट न जाये।

"यह सही है कि कानून पास हो जाने मात्र से नीग्रो गंदी बस्तियों को छोड़कर खूबसूरत महलों में नहीं पहुँच जायेंगे। स्कूलों, सिनेमाओं और होटलों में बरता जानेवाला भेदभाव भी एक दिन में नहीं मिट जायेगा। शिक्षा का स्तर आसमान पर नहीं चढ़ जायेगा। बेकार नीग्रो काम पर नहीं लग जायेंगे। उनकी आर्थिक आय पलों में दुगुनी नहीं हो जायेगी और नीग्रो बच्चों को खूबसूरत कपड़े नहीं मिल जायेंगे। स्कूलों में पर्याप्त शिक्षक भी नहीं पहुँच जायेंगे और बीमार नीग्रो तुरन्त दवा

नहीं पा जायेंगे। यह काम केवल कानून बन जाने से नहीं होगा। यह परिवर्तन तभी आयेगा, जब अमेरिका की जनता का दिल बदलेगा उनके मन में नीग्रो लोगों के प्रति सद्भावना पैदा होगी। पर कानून बन जाने से आज की हीनता की स्थिति पर हथौड़ा लगेगा। नीग्रो हीनभाव और दूसरी श्रेणी के नागरिक की सतह से ऊपर उठने के लिए तैयार हो सकेगा। इसलिए कानून का भी इतना महत्व है।" श्री किंग ने अन्त में कहा।

डा० किंग मेरे मन के हीरो क्यों बन गये ? इसलिए नहीं कि वे एक धर्म नेता हैं। इसलिए भी नहीं कि वे ईसा मसीह और चर्च को कदम-कदम पर, अपनी प्रेरणा का स्रोत मानते हैं। बल्कि इसलिए कि उन्होंने एक दलित वर्ग को समानता का दर्जा दिलाने के लिए अहिंसक संघर्ष किया है। वे सही अर्थों में एक युग-पुरुष हैं उनके साथ बिताये हुए क्षणों को मैं भूल नहीं सकता।

पर्ल एस० बक

●

कौन है पर्ल बक ? दिलों को झकझोर देनेवाले उपन्यास लिखने-वाली विश्वविख्यात महिला ? समाज, राज्य और परिवार की व्याख्या करनेवाली प्रसिद्ध नारी ? प्रेम, काम और विवाह का विश्लेषण करने-वाली प्रख्यात समाजशास्त्री ? जी हाँ, मैंने उनकी तारीफ़ में ये सारी

बातें सुन रखी थी। पर अमेरिका में जब मैं उनके घर जाकर मिला तो मुझे लगा कि पर्ल बक की इस सारी तारीफ से उनका सही परिचय नहीं मिलता। वे इन सबसे अधिक एक माँ हैं। निखालिस माँ! लिखने-पढ़ने से भी अपना अधिक समय वे उपेक्षित संतानों की सेवा में व्यतीत करती हैं। उनके माता-पिता चीन में मिशनरी थे। सेवा का गुण उन्हें विरासत में मिला है। वे राष्ट्रीय सीमाओं से दूर हैं। उनकी 'सन्तानें' चीन, जापान, जर्मनी आदि विभिन्न देशों में हैं। इन उपेक्षित सन्तानों को समुचित शिक्षा-दीक्षा देकर सुयोग्य और कुशल बनाने का नया मार्ग पर्ल बक ने खोला है। वे मानती हैं कि हर बालक समाज की सम्पत्ति है और समाज की ओर से पूरी देख-रेख पाने का अधिकार रखता है।

हम अपने मेजबान एडवर्ड और उनकी पत्नी सारा के साथ पर्ल बक के घर गये। उस दिन तेज बर्फ बरस रही थी। धरती और आसमान बर्फ की सफेदी से सफेद हो रहे थे। पेड़-पौधे पतझड़ के बाद पातहीन हो चुके थे। कहीं-कहीं कुछ टहनियों पर सूखे पीले पत्ते अपने बुढ़ापे पर रो रहे थे। पर्ल बक का घर एक छोटे-से देहात में है। वे शहर में रहना पसन्द नहीं करतीं। उनके घर के चारों तरफ खुले आसमान का दृश्य बहुत लुभावना और आसपास का वातावरण पेड़-पौधों के कारण बहुत सुहावना है।

ठंडी बर्फ से ठिठुरे, शांत पड़े हुए घर का द्वार हमने खट-खटाया तो जापान की एक रूपवती बाला ने द्वार खोलते हुए कहा : "आइये, अंदर चले आइये। स्वागत है आपका। अम्माजी आपकी प्रतीक्षा ही कर रही हैं।" उस जापानी कन्या ने हमें सोफे पर बिठाकर पेच (अग्निस्थान) में आग जलायी, ताकि अतिथि [illegible] में न ठिठुरें। पर्ल बक बिजली की सिगड़ी से ज्यादा खुले [illegible] है। खुली आग की गरमी प्राकृतिक जो है

मातृत्वभरी मुस्कान के साथ पर्ल बक कमरे में आयीं। "मेरे भारतीय अतिथियो, बहुत प्रसन्न हूँ आपसे मिलकर। पिछले ही वर्ष मैं भारत में थी।" पर्ल बक ने यों बातचीत प्रारंभ की। मैंने पूछा : "आपको भारत कैसा लगा ?" तो वे बोलीं : "कैसे बताऊँ कि मैं भारत को कितना प्यार करती हूँ। भारत के लोग अद्भुत हैं। वहाँ जिस-जिससे भी मिली, मैंने अनंत सहानुभूतिशीलता पायी। विविधताओं से भरे भारत में आजादी के बाद पिछली ही बार गयी थी। मैं देखना चाहती थी कि आजादी के बाद भारत ने क्या और कितनी प्रगति की है। दलाई लामा से मिलने और तिब्बत के शरणार्थियों की हालत देखने का भी एक उद्देश्य था। भारत जाकर बहुत प्रसन्न हुई। लेकिन इस बात का दुःख भी हुआ कि भारत गांधी के सिद्धांतों को भूलता जा रहा है।" गांधी का नाम आते ही कुछ क्षणों के लिए चुप हो गयीं। उनका कंठ रुँध-सा गया। उनके हृदय में गांधी के प्रति बेहद आदर है। उन्होंने कुछ वर्षों पहले गांधी के बारे में वाशिंगटन में कुछ व्याख्यान दिये थे, जिनमें उनका हृदय खुलकर प्रकट हुआ था। गांधी का ऐसा सजीव चित्रण बहुत थोड़े ही विदेशियों ने किया है।

पर्ल बक ने अपने जीवन का अधिकांश चीन में बिताया है। उनके उपन्यासों में चीनी पात्रों का उल्लेखनीय स्थान है। मैंने उनसे निवेदन किया कि वे अपने लेखन के बारे में थोड़ा इतिहास बतायें, साथ में यह भी कि चिंतन का उनका स्रोत कहाँ से निकलता है ? पर्ल ने हँसते हुए उत्तर दिया : "मुझे याद नहीं कि मैंने लिखना कब शुरू किया। जब से मुझे होश है, तभी से मैं लिख रही हूँ। मेरे लिखने की प्रेरणा है—मानव। वही मेरे चिन्तन का स्रोत है, वही मेरी भावनाओं का स्रोत है। वही मेरे लिखने का विषय है। मुझे मानव के विविध रूपों को देखने, [illegible] और समझने में आनंद आता है। मानव के व्यवहार,

संयुक्त राष्ट्रसंघ के सामने एक बड़ी समस्या खर्च चलाने की भी रहती है। रूस, फ्रांस, बेल्जियम, अर्जेन्टाइना आदि देशों ने अपने नाम निकलनेवाले कुछ खर्च देने से भी इनकार किया, क्योंकि कुछ मदों में किये गये खर्च से वे सहमत नहीं थे। अमेरिका में यात्रा करते समय मैंने पाया कि रिपब्लिकन पार्टी के बहुत सारे लोग संयुक्त राष्ट्रसंघ को कम्युनिस्टों का मंच मानते हैं और इसलिए उसे समाप्त कर देने का अथवा अमेरिका इस संगठन में से निकल जाय ऐसा नारा लगाते हैं। दिगाल ने भी संयुक्त राष्ट्रसंघ का मजाक उड़ाया है। बावजूद इसके संयुक्त राष्ट्रसंघ की सेनाएँ शांति-स्थापना के लिए पेलेस्टीन, कांगो, यमन, साइप्रस आदि स्थानों में उलझ रही हैं और इन कामों में काफी खर्च हुआ है। इसके अलावा यूनेस्को, यूनीसेफ आदि और भी कई अन्तर्राष्ट्रीय संगठन संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा चलाये जाते हैं, जिनके माध्यम से शिक्षा, कृषि, बाल-विकास आदि का काम होता है। इन सभी कामों को सुचारु रूप से चलाते रहने का काम, मुझे लगा कि, शायद किसी देश के प्रधानमंत्री के काम की तरह ही पेचीदा है। इसलिए ऊ थां के काम का मूल्यांकन करना सचमुच एक कठिन बात होगी।

अधिवेशन समाप्त होने का समय हो रहा था। हमने सोचा कि यद्यपि हमें अब ऊ थां से बहुत बात करने की जरूरत नहीं रह गयी है फिर भी दो मिनट के लिए ही सही, इस अद्‌भुत व्यक्तित्व का सान्निध्य तो प्राप्त करना ही चाहिए। इसलिए हम उठे और उस द्वार की तरफ गये, जहाँ से अधिवेशन के समाप्त होने के बाद ऊ थां गुजरनेवाले थे। उनके दोनों अंगरक्षक द्वार पर खड़े थे। हमने उनको थोड़े में अपना परिचय दिया और ऊ थां को लिखे गये पत्र के संबंध में जानकारी दी। उनके अंगरक्षक बहुत ही नम्र और मिलनसार थे। "अच्छा, आप उनसे मिलना चाहते हैं ?" एक अंगरक्षक ने मुस्कराते हुए पूछा।

हमारे "हाँ" कहने पर उसने कहा: "जब महासचिव बाहर आयेंगे, तब मैं उन्हें आपका परिचय करा दूँगा।" और हम एक तरफ खड़े हो गये।

कुछ ही क्षणों के बाद ऊ थाँ मुस्कराते हुए आते दिखायी दिये। उनके एक हाथ की उँगलियों ने सिगरेट को थाम रखा था और दूसरे हाथ में उन्होंने एक फाइल पकड़ रखी थी। उनकी चाल में जो मंथरता थी, उसे देखकर सहज ही किसी बौद्ध भिक्षु की याद आयी। बौद्ध धर्म के अनुयायी ऊ थाँ में यदि वैसा गुण सहज दीख पड़े तो उसमें आश्चर्य भी क्या ?

अंगरक्षक ने परिचय दिया : "ये हैं दो भारतीय नौजवान, जो शांति-यात्रा करते हुए भारत से ८ हजार मील पैदल यहाँ पहुँचे हैं।" हमने ऊ थाँ से हाथ मिलाया तो वे बोले : "ओह आप ही हैं। मुझे आपका पत्र मिला था। आप बहुत अच्छा काम कर रहे हैं।" ऊ थाँ के मुस्कराहटभरे इस आशीर्वाद से हम आनन्द-विभोर हुए जा रहे थे। मैंने कहा : "हम सब एक ही काम में लगे हैं। हमारे काम के तरीके भिन्न भले ही हों, उद्देश्य एक ही है।" ऊ थाँ ने चलते-चलते ही कहा : "निश्चय ही हम एक ही उद्देश्य के लिए काम कर रहे हैं और वह है—विश्व-शांति। मैं आपकी शांति-यात्रा के लिए शुभकामना करता हूँ।" ऊ थाँ कहीं जाने की जल्दी में थे। उनके साथ हमारे मिलने का समय भी तय नहीं हुआ था। इसलिए उनको अधिक समय के लिए रोकना उचित नहीं था। फिर भी वे बोले : "आप इस संबंध में मेरे सहयोगी श्री नरसिंहम् से मिलकर विस्तार से बात करें।" तब हमने कहा : "जी, हम उनसे मिल चुके हैं।" फिर ऊ थाँ ने कहा : "अच्छा तब तो ठीक है। आपने दो मिनिट के लिए मुझसे मिलने का कष्ट किया, उसके लिए धन्यवाद। और आपकी आगामी यात्रा के लिए गुडलक। मेरी मंगल कामना है।" ऊ थाँ आगे बढ़

गये। हम वहीं रुक रहे। संयुक्त राष्ट्रसंघ के महासचिव की ही नहीं, बल्कि संयुक्त राष्ट्रसंघ में प्राणों का संचार करनेवाले व्यक्तित्व की यह छाया थी।

उसके बाद हम वापस न्यूयार्क की भीड़ भरी सड़कों पर घूमते हुये अपने मेजबान के घर लौट आये।

कुमारी जॉन बायज

●

भारत की हिन्दी गायिकाओं में जो स्थान लता मंगेशकर का है, वही स्थान है अमेरिका में जॉन बायज का। मैं अमेरिका में लगभग छह महीने तक रहा। सौ से ऊपर नगरों में गया। एक दिन भी किसी होटल में नहीं ठहरा। प्रतिदिन किसी न किसी परिवार में ही अतिथि बनने का सौभाग्य मिलता था। शायद ही कोई ऐसे स्थान होंगे, जहाँ जॉन बायज के गीतों की धुन न सुनायी पड़ी हो।

किसी भी संगीत-प्रेमी अमेरिकी के घर में जॉन के गीतों के रिकॉर्ड न हों, यह नामुमकिन बात है। जॉन के कंठ में मिश्री घुली है या जहर यह तो पता नहीं, पर उसके स्वर में जादू जरूर है जो अमेरिकी युवकों के सिर चढ़कर बोलता है। अगर यह जानकर आश्चर्य न

वे कला की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। मेरे आज के नाम पर छह साल पुराने गीत बेचकर श्रोताओं के साथ मैं खिलवाड़ नहीं करना चाहती। धन के प्रलोभन में कला के साथ अन्याय करना मैं सहन नहीं कर सकती।" जान के इस दो टूक उत्तर ने न्यायाधीश के फ़ैसले का ही फ़ैसला कर दिया। कला की निष्ठा के सामने पैसे का प्रलोभन हार गया।

मैंने कल्पना भी नहीं की थी कि इस तरह की अनुपम घटना का साक्षी होने का मुझे अवसर मिलेगा। पहले तो मैंने इतना ही जाना था कि जान एक गायिका है फिर यह भी जाना कि वह युद्ध-विरोधी लोगों मे अग्रणी है। परन्तु सानफ्रांसिस्को में जब मैंने चार-पाँच घण्टे जान के साथ विताये तो पाया कि वह सबसे ज्यादा कला की साधिका है। एक साधक की भाँति वह अपने जीवन को कला की दीप-शिखा बना चुकी है।

जान ने कहा: "मेरे संगीत-कार्यक्रमों से आनेवाला लाखों रुपया कहाँ जाता है, इसकी मुझे चिन्ता नहीं। जो कुछ शान्ति-आन्दोलन, नीग्रो-आन्दोलन आदि के लिए दे देती हूँ वह तो ठीक, बाकी संगीत-कार्यक्रमों के व्यवस्थापकों के भरोसे छोड़कर मैं निश्चिन्त हूँ।"

अमेरिका मे रहनेवाली एक तेईस वर्षीय अविवाहिता तरुणी अधरों पर लाली (लिपस्टिक) न लगाये, चेहरे पर पाउडर न लगाये, यह भी तो उसके असाधारण व्यक्तित्व का ही परिचायक है।

वे कला की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। मेरे आज के नाम पर छह साल पुराने गीत बेचकर श्रोताओं के साथ मैं खिलवाड़ नहीं करना चाहती। धन के प्रलोभन में कला के साथ अन्याय करना मैं सहन नहीं कर सकती।" जान के इस दो टूक उत्तर ने न्यायाधीश के फ़ैसले का ही फ़ैसला कर दिया। कला की निष्ठा के सामने पैसे का प्रलोभन हार गया।

मैंने कल्पना भी नहीं की थी कि इस तरह की अनुपम घटना का साक्षी होने का मुझे अवसर मिलेगा। पहले तो मैंने इतना ही जाना था कि जान एक गायिका है फिर यह भी जाना कि वह युद्ध-विरोधी लोगों में अग्रणी है। परन्तु सानफ्रांसिस्को में जब मैंने चार-पाँच घण्टे जान के साथ बिताये तो पाया कि वह सबसे ज्यादा कला की साधिका है। एक साधक की भाँति वह अपने जीवन को कला की दीप-शिखा बना चुकी है।

जान ने कहा : "मेरे संगीत-कार्यक्रमों से आनेवाला लाखों रुपया कहाँ जाता है, इसकी मुझे चिन्ता नहीं। जो कुछ शान्ति-आन्दोलन, नीग्रो-आन्दोलन आदि के लिए दे देती हूँ वह तो ठीक, बाकी संगीत-कार्यक्रमों के व्यवस्थापकों के भरोसे छोड़कर मैं निश्चिन्त हूँ।"

अमेरिका में रहनेवाली एक तेईस वर्षीय *अविवाहिता तरुणी* अधरों पर लाली (लिपस्टिक) न लगाये, चेहरे पर पाउडर न लगाये, यह भी तो उसके असाधारण व्यक्तित्व का ही परिचायक है।

वे कला की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। मेरे आज के नाम पर छह साल पुराने गीत बेचकर श्रोताओं के साथ मैं खिलवाड़ नहीं करना चाहती। धन के प्रलोभन में कला के साथ अन्याय करना मैं सहन नहीं कर सकती।" जान के इस दो टूक उत्तर ने न्यायाधीश के फ़ैसले का ही फ़ैसला कर दिया। कला की निष्ठा के सामने पैसे का प्रलोभन हार गया।

मैंने कल्पना भी नहीं की थी कि इस तरह की अनुपम घटना का साक्षी होने का मुझे अवसर मिलेगा। पहले तो मैंने इतना ही जाना था कि जान एक गायिका है फिर यह भी जाना कि वह युद्ध-विरोधी लोगों में अग्रणी है। परन्तु सानफ्रांसिस्को में जब मैंने चार-पाँच घण्टे जान के साथ बिताये तो पाया कि वह सबसे ज्यादा कला की साधिका है। एक साधक की भाँति वह अपने जीवन को कला की दीप-शिखा बना चुकी है।

जान ने कहा : "मेरे संगीत-कार्यक्रमों से आनेवाला लाखों रुपया कहाँ जाता है, इसकी मुझे चिन्ता नहीं। जो कुछ शान्ति-आन्दोलन, नीग्रो-आन्दोलन आदि के लिए दे देती हूँ वह तो ठीक, बाकी *संगीत-कार्यक्रमों के व्यवस्थापकों के भरोसे छोड़कर मैं निश्चिन्त हूँ।"*

अमेरिका में रहनेवाली एक तेईस वर्षीय अविवाहिता तरुणी अधरों पर लाली (लिपस्टिक) न लगाये, चेहरे पर पाउडर न लगाये, यह भी तो उसके असाधारण व्यक्तित्व का ही परिचायक है।

श्रीमती मेरी हार्वे

बड़ी बेतकल्लुफी के साथ मेरी ने कहा: "एक बार सानफ्रांसिस्को में भारतीय वस्तुओं की प्रदर्शनी लगी थी। मैंने वहाँ एक साड़ी पहने हुए महिला को देखा। उन खूबसूरत कपड़ों पर मैं मुग्ध-सी हो गयी। तुरन्त मैंने भी एक साड़ी खरीद ली। पर मुझे तो साड़ी पहननी आती नहीं है। क्या आप लोग मुझे सिखायेंगे ?"

अमेरिका के कालिफोर्निया राज्य में सानफ्रांसिस्को से ८० मील दूर ४० हजार की आबादी की एक खेतिहर लोगों की बस्ती है—मोडेस्टो। १३ और १४ मई '६३ का दिन हमने मोडेस्टो में श्रीमती हार्वी के घर पर बिताया। बिजली के सामान की सप्लाई करनेवाले श्री मेल हार्वी (मेरी के पति) मोडेस्टो नगर से दो-तीन मील दूर अपने छोटे-से फार्म पर रहते हैं। श्रीमती मेरी अमेरिका के शांति आंदोलन का सक्रिय नेतृत्व करती रही और उसी सिलसिले में कई बार जेल भी जा चुकी है।

लगभग छह फीट लंबा कद, भूरे बाल, चेहरे पर गंभीरता, आंखों में चंचलता, और विचारों में आधुनिकता के कारण इस महिला के व्यक्तित्व में मुझे बहुत दिलचस्पी हुई। श्रीमती मेरी के साथ पहले ही परिचय में एक गहरी आत्मीयता का मुझे अहसास हुआ।

३५ वर्ष की इस उम्र में नये से नये शौक करने में अभिरुचि रखनेवाली मेरी स्वयं जितनी दिलचस्प थी, उतना ही दिलचस्प [illegible] पहनना सिखाने का काम भी। और, साड़ी [illegible] पहनाने की कला में निपुण थे। ब्रिटेन [illegible] पहनने की कला सिखायी थी। उन्हीं [illegible]

माता था, वही बताया। बहुत देर तक तो साड़ी का पल्ला ठीक स्थान पर आ ही नही रहा था, लेकिन ३०-४० मिनिट की 'कसरत' के बाद किसी तरह मेरी को साड़ी मे सजा दिया। वह रेशमी साड़ी, मेरी से संभाले नही संभल रही थी। जैसे-तैसे उसने आधे घंटे तक साड़ी को संभाले रखा; आखिर हारकर बोली : "साड़ी देखने में जितनी खूबसूरत है, सँभालने मे उतनी ही मुश्किल।"

मेरी के घर के नजदीक ही एक बड़ी स्वच्छ और सुन्दर नहर है। गरमी तो थी ही नहर मे स्नान के लिए चलने का कार्यक्रम बनाया गया। श्री मेल भी साथ चले। जब नहर पर हम सबने 'बेदिंग-सूट' पहने तो मेरी बड़ी रोमैंटिक हो उठी थी। उसके हाव-भाव और तौर-तरीके बड़े मस्ती भरे थे। उसने चोली को बड़ी सहजता के साथ उतारकर फेंक दिया और 'टॉपलेस' जांघिया पहनकर धूप खाने लगी। मुझको यह बड़ा अटपटा लग रहा था। हमारे मन के चोर को मेरी ने समझ लिया और बोली : "शरीर के अमुक अंगो को छुपाने या ढँकने की परम्परा सिवाय आदत और संस्कार के और कोई मूल्य नहीं रखती। हमने अपनी आँखों को विशेष ढंग से अभ्यस्त कर लिया है, इसलिए हमें उन अंगों को खुले रूप में देखना अभद्र प्रतीत होता है। अगर बंद स्नानघर में हम नंगे होकर नहा सकते हैं, तो खुले में उसी तरह नहाने में क्या हर्ज है ? व्यर्थ ही इन सब बातों को सामाजिक मान-मर्यादा का प्रश्न बनाया गया है"

"आप के यहाँ, अमेरिका मे ऐसे क्लब भी तो हैं, जहाँ लोग पूरी तरह नग्न होकर रहते हैं ?"

श्री मेल ने कहा : "हाँ, हैं तो। पर वे केवल सदस्यों तक सीमित हैं। ऐसे क्लबों को सामाजिक मान्यता नहीं है। ये क्लब बाहर ... है। प्रत्येक सदस्य के पास चाबी रहती है, वे अपनी

श्रीमती मेरी हार्वी

बड़ी बेतकल्लुफी के साथ मेरी ने कहा: "एक बार सानफ्रांसिस्को में भारतीय वस्तुओं की प्रदर्शनी लगी थी। मैंने वहाँ एक साड़ी पहने हुए महिला को देखा। उन खूबसूरत कपड़ों पर मैं मुग्ध-सी हो गयी। तुरन्त मैंने भी एक साड़ी खरीद ली। पर मुझे तो साड़ी पहननी आती नहीं है। क्या आप लोग मुझे सिखायेंगे ?"

अमेरिका के कालिफोर्निया राज्य में सानफ्रांसिस्को से ८० मील दूर ४० हजार की आबादी की एक खेतिहर लोगों की बस्ती है—मोडेस्टो। १३ और १४ मई '६३ का दिन हमने मोडेस्टो में श्रीमती हार्वी के घर पर बिताया। बिजली के सामान की सप्लाई करनेवाले श्री मेल हार्वी (मेरी के पति) मोडेस्टो नगर से दो-तीन मील दूर अपने छोटे-से फार्म पर रहते हैं। श्रीमती मेरी अमेरिका के शांति आंदोलन का सक्रिय नेतृत्व करती रही और उसी सिलसिले में कई बार जेल भी जा चुकी है।

लगभग छह फीट लंबा कद, भूरे बाल, चेहरे पर गंभीरता, अंगों में चंचलता, और विचारों में आधुनिकता के कारण इस महिला के व्यक्तित्व में मुझे बहुत दिलचस्पी हुई। श्रीमती मेरी के साथ पहले ही परिचय में एक गहरी आत्मीयता का मुझे अहसास हुआ।

३५ वर्ष की इस उम्र में नये से नये शौक़ करने में अभिरुचि र—
वाली मेरी स्वयं जितनी दिलचस्प थी, उतना ही दिलच-
पहनना सिखाने का काम भी। खैर,
पहनाने की कला में नि
पहनने की कला

भाता था, वही बताया। बहुत देर तक तो साड़ी का पल्ला ठीक स्थान पर आ ही नहीं रहा था, लेकिन ३०-४० मिनिट की 'कसरत' के बाद किसी तरह मेरी को साड़ी में सजा दिया। वह रेशमी साड़ी, मेरी से संभाले नहीं सभल रही थी। जैसे-तैसे उसने आधे घंटे तक साड़ी को संभाले रखा; आखिर हारकर बोली : "साड़ी देखने में जितनी खूबसूरत है, सँभालने मे उतनी ही मुश्किल।"

मेरी के घर के नजदीक ही एक बड़ी स्वच्छ और सुन्दर नहर है। गरमी तो थी ही नहर मे स्नान के लिए चलने का कार्यक्रम बनाया गया। श्री मेल भी साथ चले। जब नहर पर हम सबने 'बेदिंग-सूट' पहने तो मेरी बड़ी रोमेंटिक हो उठी थी। उसके हाव-भाव और तौर-तरीके बड़े मस्ती भरे थे। उसने चोली को बड़ी सहजता के साथ उतारकर फेंक दिया और 'टॉपलेस' जांघिया पहनकर धूप खाने लगी। मुझको यह बड़ा अटपटा लग रहा था। हमारे मन के चोर को मेरी ने समझ लिया और बोली : "शरीर के अमुक अगो को छुपाने या ढँकने की परम्परा सिवाय आदत और संस्कार के और कोई मूल्य नहीं रखती। हमने अपनी आँखो को विशेष ढग से अभ्यस्त कर लिया है, इसलिए हमे उन अगों को खुले रूप मे देखना अभद्र प्रतीत होता है। अगर बद स्नानघर में हम नगे होकर नहा सकते हैं, तो खुले में उसी तरह नहाने मे क्या हर्ज है ? व्यर्थ ही इन सब बातों को सामाजिक मान-मर्यादा का प्रश्न बनाया गया है"

- "आप के यहाँ, अमेरिका में ऐसे क्लब भी तो हैं, जहाँ लोग पूरी तरह नग्न होकर रहते हैं ?"

श्री मेल ने कहा : "हाँ, हैं तो। पर वे केवल सदस्यों तक सीमित ऐसे क्लबो को सामाजिक मान्यता नहीं है। ये क्लब बाहर रहते हैं। प्रत्येक सदस्य के पास चाबी रहती है, वे अपनी

ले लेकर खाने लगे। मेरी और मेल ने भी वैसा ही किया। खाने का खूब आनंद आया। अंगुलियाँ चाट-चाटकर खाने के उस प्रसंग को मैं तो क्या, मेरी भी शायद ही कभी भूल पाये।

"आप लोग अमेरिका से कहाँ जायेंगे?" मेरी ने पूछा।

"जापान।" हमने कहा।

"वहाँ क्या कार्यक्रम है?"

"टोकियो से हिरोशिमा तक की पदयात्रा।" हमने बताया।

"कितने मील की पदयात्रा होगी?"

"यही कोई सात सौ मील के करीब।"

"कितने दिन लगेंगे?" मेरी ने उत्सुकता से पूछा।

"यही कोई दो महीने।"

"क्या कहूँ?" मेरी ने उदास स्वर में कहा: "जब जापान और हिरोशिमा का नाम सुनती हूँ तो दिल बैठ जाता है और लगता है कि मैंने ऐसे देश में क्यों जन्म लिया, जिसने जापान पर अणुबम गिराकर लाखों निरीह लोगों का संहार कर डाला। क्या मैं भी आप के साथ टोकियो से हिरोशिमा तक की पदयात्रा में शामिल हो सकती हूँ?"

"अवश्य! लेकिन क्या तुमसे यह हो सकेगा? क्या पैदल चलना तुम्हारे लिए कष्टकर नहीं होगा?" मैंने पूछा।

"कष्ट? जब एक अमरीकी पायलट ने हीरोशिमा और नागासाकी के लोगों को अणुबम की आग में धकेल दिया तब क्या उनसे पूछा गया था कि आपको अणुबम की आग में कष्ट तो नहीं हो रहा है? सतीश, मैं सोचती हूँ कि हमने अणुबम गिराकर जो भयंकर अपराध किया है, उसका एक छोटा-सा प्रायश्चित करने के रूप में मैं म्हारे साथ टोकि से हिरोशिमा तक पैदल चलकर जाऊँ और सामा से क्षमा याचना करूँ।" मेरी इस रह ही क्या गया था। उस

मेरी ने सचमुच वैसा ही किया। वह टोकियो से हिरोशिमा की पदयात्रा में हमारे साथ रही। निश्चय ही उसे इस यात्रा में बहुत कष्ट हुआ। पैरों में छाले पड़ गये। एक पैर का छाला तो घाव बनकर पक गया और उसका ग्रापरेशन कराना पड़ा। हम लोग छः अगस्त को हिरोशिमा में थे। दिनभर मेरी रोती रही। बार-बार उसे संभालना पड़ रहा था। मेरी का हृदय असाधारण रूप से कोमल, भावुक और संवेदनशील था।

मेरी कई हजार डॉलर खर्च करके जापान आयी और हमारे साथ रही। उसके साथ घंटों बातें करते रहने का अवसर मुझे मिला। पदयात्रा करते समय मार्क्स, गांधी, थोरो, ज्याँ पॉल सार्त्र, बोवा आदि अक्सर हमारी चर्चा के मुख्य विषय होते थे।

मेरी अपने पति से बेहद प्यार करती है। जब तक वह जापान में हमारे साथ रही, प्रत्येक रविवार को अमेरिका में बैठे अपने पति से टेलीफोन पर बात किया करती थी। बच्चों के प्रति भी बहुत ममता थी। बच्चों के बारे में हम कई बार चर्चा करते थे। मैं कहता था : "देखभाल के लिए माँ-बाप ही हों, यह जरूरी नहीं है। प्रशिक्षित एवं कुशल स्त्री-पुरुष बच्चों का लालन-पालन करने का काम करें और उसकी व्यवस्था समाज की तरफ से अथवा सरकार की तरफ से हो। प्लेटो ने जिस तरह की कल्पना की थी उसमें काफी सार था।"

इन बातों में मेरी बहुत दिलचस्पी लेती और हम खूब बहस करते। उसने मुझे भान भर के लिए पेरिस से प्रकाशित "रीलनिटीव" मासिक भेंट किया। पार्कर का एक बड़ा खूबसूरत फाउन्टेन पेन दिया। ...र महीने पत्रिका के साथ और हर दिन लिखने के समय पेन के ... मेरी याद भी मेरे साथ है। मेरी उन महिलाओं में से है जो ... सम्मान भी अपने लिए अजाशी है।

प्रगति का अगर कोई रास्ता है तो अहिंसा के साथ ही है। धर्म वे लोगों ने धार्मिक भाषा में, जो अहिंसा शब्द का प्रयोग अबतक किया है वह बहुत ही अधूरा, एकांगी तथा कायरता का सूचक है; परन्तु गांधी ने अहिंसा को न्याय-प्राप्ति का मार्ग बनाकर शोषित मनुष्य के हाथ में एक बलवान शस्त्र सौंपा।

डा० युकावा ने पिछले महायुद्ध के सन्दर्भ में कहा : "जापान ने हिंसा का रास्ता पकड़ा। फिर उसे हिंसा ने ही परास्त भी किया। हिरोशिमा और नागासाकी में लाखों लोगों को अणुबम की ज्वाला ने भस्म कर दिया। लेकिन, जापान के लोगों ने युद्ध के बाद एक सबक सीखा और एक नया कानून बनाया कि अब यह देश सेना का संगठन नहीं करेगा। बाहर के किसी भी देश में जापान का कोई आदमी सिपाही बनकर, हाथ में बन्दूक लेकर नहीं जायेगा। यह कानून एक वैज्ञानिक के लिए सबसे बड़ा वरदान है; क्योंकि जापान का यह कानून वैज्ञानिक को समाज के निर्माण का अवसर देता है, समाज को नष्ट करने का नहीं। अगर सारे संसार के देश यह निर्णय करें कि उनका कोई आदमी दूसरे देश में बन्दूक लेकर नहीं जायेगा, लड़ने-मरने के लिए नहीं जायेगा तो हम वैज्ञानिक इस धरती की काया-पलट कर सकते हैं।

उन्होंने बातचीत का प्रारम्भ अपनी भारत की यात्रा के संस्मरण सुनाते हुए किया। बम्बई में अणु-अनुसन्धान के काम के प्रति सन्तोष और डा० भाभा की योग्यता का बखान करते हुए उन्होंने कहा कि अणुशक्ति-आयोग के गोरखधन्धे ने डा० भाभा-जैसे व्यक्ति को इतना व्यस्त कर दिया है कि सच्चे वैज्ञानिक-अनुसन्धान के काम में उनको समय देने का मौका कम मिलेगा। डा० युकावा ने अपना अनुभव सुनाते हुए कहा : "मैंने इसी व्यस्तता से मुक्ति पाने के लिए जापान अणुशक्ति-आयोग की अध्यक्षता से त्यागपत्र दिया है और मैं अपना पूरा समय अपनी अनुसन्धान-शाला में बिता रहा हूँ। इसके अलावा मेरा सारा समय राष्ट्रीय-संकीर्णता से ऊपर उठकर विश्व-संघ की स्थापना में जाता है।"

डा० युकावा स्वयं तो इस तरह के जन-कार्यों में लगे ही हैं; उनकी पत्नी उनसे भी अधिक विश्व सरकार की स्थापना के प्रयत्नों में लगी हैं। वे अनुसन्धान-शाला की उलझनों में व्यस्त नहीं हैं; इसलिए उनकी पूरी शक्ति विश्व-सरकार की स्थापना के आन्दोलन में लग रही है।

डा० युकावा ने नेहरूजी के बारे में कहा कि इस व्यक्ति ने राजनीति को मात्र सत्ता का खिलौना न मानकर उसे विचारक और दार्शनिक की भाँति एक शास्त्र माना। इसलिए संसार के राजनीतिज्ञों की पंक्ति में वे कुछ अलग ही दीख पड़ते थे। जब तक राजनीति के पीछे सिद्धांतों का बल नहीं होगा, तब तक उससे सच्चा लाभ संसार को नहीं मिलेगा। उन्होंने आज की राजनीति के परिणामों पर असन्तोष व्यक्त करते हुए कहा कि सारे संसार में मनुष्यजाति के टुकड़े-टुकड़े हो रहे हैं—जर्मनी के दो टुकड़े, वियतनाम के दो टुकड़े और कोरिया के दो टुकड़े। इस तरह सब जगह टुकड़े ही टुकड़े हो गये हैं।

सारे दक्षिण पूर्वी एशिया के राजनीतिज्ञ एक दूसरे के खिलाफ खड़े हैं। नेहरूजी ने इस विचार को समझा कि एशिया

के गरीब लोगों को युद्ध और झगड़ा नहीं चाहिए; बल्कि रोटी चाहिए और चाहिए शिक्षा में प्रगति। अगर हम उस विचार को समझकर सारे एशिया को 'शांति-क्षेत्र' बना सकें और यह तय कर सकें कि चाहे कितनी की कठिन समस्या उपस्थित क्यों न हो, हम हथियार नहीं उठायेंगे तो निश्चय ही बहुत बड़ी बात होगी। अगर छोटे-छोटे देश आज की तरह ही लड़ते रहेंगे तो एशिया के विकास की गाड़ी का दल-दल से बाहर निकलना संभव नहीं।

जापान को डा० युकावा पर गर्व हो, यह तो ठीक ही है; पर सारे एशिया और सारे विश्व को ऐसे महान वैज्ञानिक की उदात्त साधना पर अभिमान क्यों न हो? विज्ञान का बल और वैज्ञानिक का मार्ग-दर्शन इस विश्व को अणुबम की ज्वालाओं से बचायेगा, इस विश्वास के साथ हमने डा० युकावा को प्रणाम किया।

कुमारी सुएको कोयानागी

वादिता और अंधविश्वासों के विरुद्ध बग़ावत करके जापानी युवकों ने अपने लिए स्वतंत्र जीवन का मार्ग अपनाया है। इस उन्मुक्तता और स्वतंत्रता की प्रतीक के रूप में कुमारी सुएको कोयानागी मेरे सामने है।

अमेरिका से हवाई-द्वीप की यात्रा का आनंद लेकर जब हम टोकियो पहुँचे तो वहाँ के लगभग सभी समाचार-पत्रों ने हमारी टोकियो से हिरोशिमा तक की पैदल यात्रा का समाचार प्रकाशित किया। विश्व-विद्यालय की छात्रा सुएको ने भी यह समाचार पढ़ा और हमारा पता ढूढ़ते-ढूढ़ते वह हम तक पहुँची और उसने भी हिरोशिमा तक को पैदल यात्रा करने की इच्छा ज़ाहिर की। सुएको के साथ साथ उसकी एक अन्य मित्र कुमारी मिओको दोई भी यात्रा में चलना चाहती थी। अमेरिका की श्रीमती मेरी हार्वी तो थी ही। श्री रिओ दम्पति भी हमारे साथ चले। इस तरह हमारे साथ एक पूरा दल बन गया था।

सुएको की माँ को पदयात्रा का यह विचार बहुत पसंद नहीं था लेकिन सुएको ने अपनी माँ से कहा : "मैं अब बालिग हो चुकी हूँ। जीवन के प्रति मुझे सोचने का अधिकार होना चाहिए। इसलिए आप मेरी आकांक्षाओं के बीच न आयें!" सुएको की इस बात में उसके मन की उन्मुक्तता प्रकट होती है।

हमलोग पद-यात्रा पर रवाना हुए। मैंने देखा कि सुएको पर कोई विचार लादा नहीं जा सकता। अध्यात्म और धर्म के प्रति उसके [illegible]रों में काफ़ी विद्रोह था, जब कि उसकी मां 'सोकेगाकाई' [illegible] की कट्टर अनुयायी। सुएको सम्प्रदाय-बद्ध [illegible] से मानवीय मूल्यों की उपासिका है। उसका हृदय [illegible] एवं उदार है। किसी भी व्यक्ति के साथ आसानी से

चाला संकोच काफूर हो गया। स्नान करने में खूब ग्रानंद ग्राया। जगह बहुत ही स्वच्छ सुन्दर ग्रौर फूलों से सजी हुई थी। फूलों की सजावट जापानी जीवन का विशेष ग्रंग है। 'एकाबाना' नाम से फूलों को सजाने की कला का विद्यालयों में विशेष रूप से प्रशिक्षण दिया जाता है। इस कला में सुएको भी काफी निपुण है।

हिरोशिमा तक की यात्रा पूरी कर लेने के बाद जब हम वापस टोकियो ग्राये तो सुएको ने मुझे ग्रपने घर पर भी बुलाया ग्रौर टोकियो के मनोरंजन-केन्द्रों में भी घुमाया। मेईजी-जिगु नाम के सुप्रसिद्ध शिन्तो मंदिर देखने के लिए हम गये। टोकियो का यह एक प्रसिद्ध तथा कला-पूर्ण स्थान है। इसी तरह से मान्तोकुते उपवन में भी सुएको के साथ घूमने का ग्रवसर मिला। ये दोनों ही स्थान जापानी युवक-युवतियों की चहल-पहल से भरे हुए थे। जापान ने न केवल ग्रौद्योगिक प्रगति, भौतिक सम्पन्नता ग्रौर सांस्कृतिक उन्नति में ही यूरोप ग्रौर ग्रमेरिका को पछाड़ दिया है; बल्कि उन्मुक्त-सेक्स एवं नग्न नृत्यों के प्रदर्शन में भी शायद टक्कर ली है। टोकियो के गिंजा बाजार की रौनक को देखकर यह ग्रासानी से ग्रंदाजा लगाया जा सकता है।

सुएको के साथ मैंने गिंजा के गुलजार माहौल को भी देखा। नेचिगेकी भवन में पहुँचकर तो ऐसा भान ही नहीं होता था कि हम किसी एशियाई देश में हैं। जापानी ग्रौर ग्रमेरिकी ढंग के ग्रामोद-प्रमोद का चकित कर देनेवाला कार्यक्रम हमने यहाँ देखा। सुएको ने कहा: "जीवन की नयी परिभाषाग्रों में हम कुछ भी विकृति या पाप नहीं मानते। न हम शराब पीने को गलत समझते हैं ग्रौर न गेईशा-वालाग्रों की सेवा ही लेने को बुरा समझते हैं। मैं ग्रपने भाई ग्रौर ... के साथ बिना किसी हिचक के नाइट-क्लबों या नग्न-नृत्य प्रदर्शित